जीवन-गीत



आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

नमन

135435

नमन राजरानी माँ! तुमको शत-शत बार प्रणाम।
बचपन में ही मुझे छोंड़ तुम गयीं राम के धाम।।

मुझको चलना सिखा रही थी
दिखा रहीं शुभ राह,
घोर कष्ट की भी माँ! तुमने
की न कभी परवाह,

पावन पुण्य तुम्हारी सुस्मृति रहती आठो याम।
नमन राजरानी माँ! तुमको शत-शत बार प्रणाम।।

माँ की ममता-वत्सलता का
कहीं नहीं सम-तोल,
माँ का प्यार-दुलार लोक में
सब विधि है अनमोल,

माँ के चरणों में वसते हैं सकल पुण्यमय धाम।
नमन राजरानी माँ! तुमको शत-शत बार प्रणाम।।

इस धरती पर संतति के हित
माँ ही है परमेश,
माँ से उऋण नहीं हो सकता
कोई भी 'मधुरेश',

माँ के लोक-ललाम सभी गुण, माँ में ही आराम।
नमन राजरानी माँ! तुमको शत-शत बार प्रणाम।।

12.08.2019

–आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

जीवन-गीत

(गीत-संग्रह)

कृतिकार

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

साहित्य-रत्नालय

I.S.B.N. : 978-81-8378-128-2

- पुस्तक का नाम– जीवन–गीत
- रचनाकार – भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'
- सम्पर्क– 'साहित्य–मण्डप', चन्द्रलोक कालोनी, शहजादपुर
  अकबरपुर–224122, अम्बेडकरनगर (उ.प्र.)
- चलभाष– 7080322795,7668525342
- प्रकाशक–साहित्य रत्नालय, गिलिस बाजार, कानपुर 208001
- प्रथम संस्करण – 2019

- पुनः प्रकाशनार्थ न्योछावर– 120 रुपये मात्र
- मुद्रक– आदर्श आफसेट प्रेस, शहजादपुर

JEEVAN-GEET

By- Bhanudatt Tripathi 'Madhuresh'

पूर्व कथ्य

काव्य–साहित्य में 'गीत' एक ललित एवं कला–कलित विधा है। गेयता, गीत का प्रधान तत्त्व है। सहज गेयता के अभाव में गीत की गति एवं गुण–गरिमा क्षीण होती है। प्रसन्न, प्रशान्त तथा भावोच्छल अन्तःकरण से प्रस्फुटित स्वर–शब्द–विधान गीत को आकार प्रदान करता है। वस्तुतः गीत तो प्रकृति का स्वतःस्फूर्त स्वर–ध्वनि–विग्रह है। नदियों के कल–कल जलनाद में, खग–कुल के चह–चह कलरव में, मधुपों के गुं–गुं–गुंजन में और पवन के सन्–सन्– संचरण में भी गीत की प्राकृत परिलब्धि होती है। जब–कभी एकान्त–शान्त स्थिति में मन स्वप्रसादित–आह्लादित होता है, तब अन्तःकरण में स्वयमेव एक गुंजन–गुनगुनाहट उद्भूत होती है, यही भाव–शब्द–व्यंजना से अभिसिंचित होकर गीत किंवा गीति को रूपायित करती है। एतावता, इसी पृष्ठभूमि पर गीत का अवतरण होता है, जो मानव–मन एवं जीवन को सरसित अथच आनन्दित करता है। गीत आत्मा का आक्षर आनन्द एवं अनुवाद है।

मैं स्वयं को गीतकार नहीं मानता, किन्तु क्या करूँ, विवश हूँ। जब कभी, किसी भी दशा में शब्द और भावों को परस्पर गले मिलते हुए पाता हूँ, तब मेरे अन्तःकरण में एक आकुल गुनगुनाहट उत्पन्न होती है और मैं उसको लेखनी के सहारे कागज के पटल पर उतारने का प्रयास करता हूँ, जिससे मुझे एक अकथ आनन्द की अनुभूति होती है। इसी अभिव्यक्ति को प्रबुद्ध अनुभावक 'गीत' अभिधान प्रदान करते हैं। इस प्रकार की मेरी गीत– रचनाओं का प्रथम संग्रह– 'उरवीणा' ई0 सन् 1985 में प्रकाशित हुआ था, जिसको सुमित्रानन्दन पन्त, शिव मंगल सिंह 'सुमन', शिवसिंह 'सरोज' तथा डॉ. लक्ष्मी शंकर मिश्र 'निःशंक' जैसे महा मनीषी कवियों, गीतकारों एवं शब्द–साधकों ने मुक्तकण्ठ से अभिनन्दित एवं आशीर्वादित किया था। 'उरवीणा' के पश्चात् मेरे 'पुष्पान्जलि' (भक्तिगीत संग्रह) 'जय भारत, जय भारती' (राष्ट्रीय गीत संग्रह), 'गीत गोपाल' (ब्रजभाषा गीत संग्रह) एवं 'गीतपर्व', 'गीतवृन्दावन', 'गीतगंगा', 'विविधायन' शीर्षक गीत–संग्रहों के अतिरिक्त 'आओ बच्चो गाओ बच्चो', 'बच्चे गायें गीत', 'गीतों के गुब्बारे', 'पर्यावरण की पुकार' एवं बच्चों की दुनिया प्रभृति, बालगीत–संग्रह भी प्रकाशित हुए, जिनमें से अधिसंख्य गीत शताधिक पत्र–पत्रिकाओं में भी प्रकाशित–प्रशंसित हुए। इस सबको मैं अपने पुरूषार्थ का फल न मानकर एक मात्र परमात्मा का कृपा–प्रसाद ही मानता हूँ।

जब मैं कक्षा 8–9 का विद्यार्थी था, तभी कविता एवं गीत–रचना का अंकुरण मेरे अन्तःकरण में होने लगा था, और यदा–कदा स्वतः एक 'गुनगुनाहट' होने लगती थी, जो समय पाकर लेखनी के माध्यम से प्रकट होने लगी, और उत्तरोत्तर यह अनुभूति एवं अभिव्यक्ति अभी–तक होती आ रही है।

प्रस्तुत संग्रह– **"जीवन–गीत"**–में अथ से अभी तक के शेष–विशेष गीत रचनाओं को अनुस्यूत किया गया है। ये गीत–रचनायें मेरे जीवन के विविध बहुरंगी क्षणों–प्रसंगों के स्वतः साक्षी हैं। इनमें वैयक्तिक के साथ सार्वजनिक–सार्वभौमिक वेदना–संवेदना एवं चेतना–प्रेरणा भी प्रस्फुटित हुई है। इनकी सारता–असारता का निश्चय–निर्णय तो सुहृद्–सहृदय–सुधी अनुभावक ही कर सकते हैं। मुझे तो परमात्मा ने इन रचनाओं के प्रकटन में मात्र 'निमित्त' ही बनाया है।

वस्तुतस्तु, मेरी साहित्य –सृजन एवं गीत–सृजन–यात्रा में मेरी देवीस्वरूपा धर्मभार्या श्रीमती सुमन त्रिपाठी की प्रज्ञा पुनीत प्रेरणा मेरे लिए सदैव "पाथेय" सिद्ध होती रही। उनके सबल सम्बल से मैं साहित्य–साधना में निश्चिन्त भावेन अग्रसर रहा। 31 अगस्त–2018 को उनका आकस्मिक 'साकेतवास' हो जाने से मेरे मन–जीवन पर अन्यथा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। मेरी सृजन–यात्रा का वे अविस्मरणीय स्मारक–दीप हैं। उनकी 'पावन–स्मृति' को मेरे 'श्रद्धा–सुमन' सदैव समर्पित हैं।

मेरी गीत–साहित्य–सृजन–यात्रा को अनेक सिद्ध साहित्य साधकों–आराधकों का आशीर्वाद मिला है, मिलता रहा है। उनमें डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, श्रीमती महादेवी वर्मा, हरिशंकर परसाई, श्यामबिहारी 'बिहारी' (सनेहीयुगीन कवि), डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम', डॉ. प्रतीक मिश्र, राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी, हनुमान प्रसाद (मनु शर्मा), प्रभृति प्रमुख हैं। एवमेव ऋषिकल्प परमसन्त श्री नृत्य गोपालदास जी महाराज (अयोध्या), स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती 'करपात्री जी (काशी)', स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती (वृन्दावन), डॉ. रामकुमार दास (अयोध्या) एवं शास्त्रार्थमहारथी स्वामी माधवाचार्य (दिल्ली) इत्यादि महानुभाव मेरे लिए सदैव समादरणीय एवं अविस्मरणीय हैं।

प्रस्तुत **'जीवन–गीत'** संग्रह की प्रेस कॉपी तैयार करने में चि. राघवेन्द्र त्रिपाठी, सीमा त्रिपाठी, सुस्मिता त्रिपाठी (शुभी)एवं सुचिता पाण्डेय (प्राची) का योगदान न भूलने योग्य है। **'जीवन–गीत'** के टंकण–कार्य में प्रिय दुर्गेश प्रजापति, अवनीश वर्मा एवं मुद्रण कार्य में आदर्श आफसेट प्रेस (शहजादपुर) के अधिपति अमरनाथ वर्मा का सहयोग सदैव प्रशंसनीय है। ये मेरे हार्दिक स्नेहाशीष के पात्र बने रहेंगे।

मेरी सृजन–यात्रा को अनेक सहृदय सुहृदों, शुभचिन्तकों, रसज्ञ अनुभावकों ने सदैव अपनी सद्भावनाओं–मंगलकामनाओं से अभिसिंचित किया है। ये सभी मेरे लिए सदा–सर्वदा आदर एवं अपनत्व के अधिकारी हैं।

"जीवन–गीत" की प्रति आपके हाथ में है। आपका अमल अन्तःकरण ही अपने अपनत्व से इसकी सार्थकता को प्रमाणित करेगा।

किं बहुना, "त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये "।

आपका अपना

अक्षयनवमी–2019 **–भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश**

सादर समर्पण

उस परमपिता परमात्मा को,
जिसने मुझे मानव – शरीर देकर
आत्म–उद्धार का अवसर प्रदान किया।

उन पूज्या माँ राजरानी देवी को,
जिन्होंने मुझे जन्म देकर बड़ी कठिनाइयों
में भी पालन – पोषण किया।

उन देवी स्वरूपा धर्मभार्या सुमन देवी को,
जिनके स्नेहिल संबल एवं पावन प्रेरणा से
मैं साहित्य–सृजन में अग्रसर हुआ।

उन समस्त साहित्य–प्रेमी सुधी सुजनों,
संतों–महापुरुषों को, जिनके सहज स्नेह,
सद्भाव एवं शुभ कामनाओं का महाप्रसाद
मेरे लिए सदैव "अनमोल – निधि" बना।



माँ! अर्पित सादर तुम्हें विनयभाव के फूल।
करो कृपा 'मधुरेश' पर, हरो सकल पथ-शूल।।

वाणी-वन्दन

ओ काव्य–कला–कलकानन की करुणा–कोमल अधिवासिनि माँ!
स्वीकारो वन्दन–अभिनन्दन, ओ सरस्वती मधुहासिनि माँ!!

माँ विद्या का अवतार धवल,
माँ का मन अमित उदार धवल,
मोती–मणियों का हार धवल,
माँ का अनुपम श्रृंगार धवल,

कल राजहंस पर राज रही पावन प्रज्ञा–उद्भासिनि माँ!
स्वीकारो वन्दन–अभिनन्दन, ओ सरस्वती मधुहासिनि माँ!!

भारती, शारदा, माँ वाणी,
वीणावादिनि! तुम कल्याणी,
वरदान तुम्हारा ही पा कर
चिन्मय होते मानव प्राणी,

नर–मुनि ही क्या, सुर भी कहते जय हो जय बुद्धिविकासिनि माँ!
स्वीकारो वन्दन–अभिनन्दन, ओ सरस्वती मधुहासिनि माँ!!

वाणी का विश्वविधायक हो
चिर नूतन भारतदेश सदा,
महिमा–मण्डित मानवता का
जयगान करे 'मधुरेश' सदा,

कर कृपा–कोर कृतकृत्य करो नित नवनव भाव–प्रकासिनि माँ!
स्वीकारो वन्दन–अभिनन्दन, ओ सरस्वती मधुहासिनि माँ!!

घनाक्षरी

काव्य के वितान पर, वाणी के विधान पर, मन्द–मृदु वल्लकी के तार झनकारती,
नव्य–नव्य कल्पना की दिव्य भाव–भूमि पर शशि के समान कलहंस को उतारती।
मानवीय मंगल के मोदमय मंच पर सकल अमंगलों के अंधड़ निवारती,
'मधुरेश' सविशेष करके कृपा की कोर रसना पै कवि की विराजो अम्ब भारती!!

प्रेम सब सुखसार

प्रेम ही परमात्मा है, प्रेम सब सुखसार है।
प्रेम ही सबके लिये आनन्द का आधार है।।

धन्य वे, जो प्रेम–सागर में सदा अवगाहते।
लोक में जड़ हों कि चेतन, प्रेम ही सब चाहते।।

प्रेम–बिन पूरी कभी होती न कोई साधना।
प्रेम–रस पाया नहीं, तो व्यर्थ है आराधना।।

प्रेम से बढ़ कर कहीं अमृत नहीं संसार में।
शूल बन कर फूल खिलते हैं हृदय के प्यार में।।

प्रेम बढ़ता है सदा सच्चे सहज अनुराग से।
प्रेम पकता है सदा बैराग से, तप–त्याग से।।

प्रेम–बन्धन लोक के सब बन्ध देता खोल है।
मोल है सर्वस्व, वैसे प्रेम तो अनमोल है।।

प्रेम ही परमार्थ है औं सुपथ निज संधान का।
प्रेम खिल सकता नहीं पाकर गरल अभिमान का।।

प्रेम ही उपमेय अपना, प्रेम ही उपमान है।
प्रेम ही रूठे हुए विश्वास की मुस्कान है।।

प्रेम की नौका सदा भवसिन्धु से है तारती।
पुण्य पावन प्रेम की सुर भी उतारें आरती।।

प्रेम की अनुभूति से है अटल मति 'मधुरेश' की।
प्रेम के बिन प्राप्ति हो सकती नहीं परमेश की।।

उठो बटोही!

उठो बटोही! चलो सुपथ पर, क्यों बैठे हो यों मन मारे।
दुर्लभ मानव जीवन के क्षण बीत रहे हैं मीत! तुम्हारे।।

अनजाने, आलस में तुम ने
जाने कितना समय गवाँया,
सोचो, अब–तक इस जीवन में
तुमने क्या खोया? क्या पाया,

मन के जीते जीत यहाँ है, हार यहाँ है मन के हारे।
उठो बटोही! चलो सुपथ पर, क्यों बैठे हो? यों मन मारे।।

साँस–साँस उल्लास भरा हो,
रहो आत्मबल के विश्वासी,
चाहे दुख की घिरे अमावस,
या सुख की हो पूरनमासी,

धर्मधरा पर चलो कर्ममय ज्योति जगाकर धीरज धारे।
उठो बटोही! चलो सुपथ पर, क्यों बैठे हो? यों मन मारे।।

परिवर्तनमय विश्वपटल पर
जिसने रंच न रुकना जाना,
उसको ही मिल सका एक दिन
अपना इष्ट लक्ष्य मनमाना,

झंझाओं से लड़कर ही तो लग पाती है नाव किनारे।
उठो बटोही! चलो सुपथ पर, क्यों बैठे हो? यों मन मारे।।

है ध्रुव तथ्य, एक दिन सब कुछ
छोड़ यहाँ से जाना होगा,
जाने के पहले अपने को
अपने में ही पाना होगा,

तभी तुम्हें 'मधुरेश' मिलेंगे मानव जीवन के फल सारे।
उठो बटोही! चलो सुपथ पर, क्यों बैठे हो? यों मन मारे।।

ऐसा दीप जगाओ

कवि! ऐसा दीप जगाओ तुम, सारे जग में उजियारा हो।
मानवता के पावन पथ पर कोई न कहीं अँधियारा हो।।

भारतमाता का कर वन्दन,
तुम करो विश्व का अभिनन्दन,
मानवता को अर्पित कर दो,
शुभ भावों के अक्षत–चन्दन,

सर्वदा सत्य–शिव–सुन्दर से स्पन्दित जन–जीवनधारा हो।
कवि! ऐसा दीप जगाओ तुम, सारे जग में उजियारा हो।।

भर दो जीवन में हास नवल,
भर दो मन में विश्वास नवल,
कल कविता के कोकिल स्वर से
जन–जन में हो उल्लास नवल,

सब सुखी सदा सारोग्य रहें, कोई न भाग्य का मारा हो।
कवि! ऐसा दीप जगाओ तुम, सारे जग में उजियारा हो।।

सबका हो शील–स्वभाव अमल,
सबसे सबका हो चाव अमल,
जन–गण–मन में द्युतिमान रहे
सच्चा स्नेहिल सद्भाव अमल,

जग में निश्छल मानवता का सबके मुख से जयकारा हो।
कवि! ऐसा दीप जगाओ तुम, सारे जग में उजियारा हो।।

हो सब श्रुतियों का सार सृजन,
हो स्नेहिल सरस उदार सृजन,
परमेश्वर का बन जाय भजन,
ऐसा हो रहित विकार सृजन,

'मधुरेश' सदा महिमण्डल में ज्योतिर्मय देश तुम्हारा हो।
कवि! ऐसा दीप जगाओ तुम, सारे जग में उजियारा हो।।

राम-कृपा से ही कुछ लिखना

मनहर गीत लिखूँ मैं कैसे, राह निरा अनजानी है।
राम–कृपा से ही कुछ लिखना अपनी राम कहानी है।।

गीतकार या सुकवि बनूँ मैं,
ऐसा कुछ अभियान नहीं,
मैं ही ज्ञानवान् हूँ जग में,
ऐसा भी अभिमान नहीं,

एक पूर्ण परमेश्वर ही तो सकल कलाविद्–ज्ञानी है।
राम–कृपा से ही कुछ लिखना अपनी राम कहानी है।।

वह भी कैसा कवि–लेखक ? जो
अहंकार को खो न सका,
अपना सब कुछ अर्पित करके
प्रभु का सेवक हो न सका,

अहंभाव ने बात सत्य की नहीं कभी भी मानी है।
राम–कृपा से ही कुछ लिखना अपनी राम कहानी है।।

वे अति धन्य–मन्य हैं जग में
जिनको प्रभु का प्रेम मिला,
जिनके कल कवित्व से सबके
मन का भाव–प्रसून खिला,

वह ही श्रद्धा–ज्योति, लोक में जो जीवन रस–दानी है।
राम–कृपा से ही कुछ लिखना अपनी राम कहानी है।।

निन्दा या कि प्रशंसा की भी
मुझको कुछ परवाह नहीं,
सबका बनूँ शिरोमणि जग में,
ऐसी कोई चाह नहीं,

मन जग का कल्याण चाहता, फिर भी हिन्दुस्तानी है।
राम–कृपा ही कुछ लिखना अपनी राम कहानी है।।

काम करो निष्काम भाव से

काम करो निष्काम भाव से, नहीं कामना करो नाम की।
नाम काम से अमर हुआ है, सदा करो साधना काम की।।

नश्वर तन क्या अमर रहेगा,
भंगुर जीवन की क्या सत्ता,
कल्पित नाम सभी के होते,
सदा काम की रही महत्ता,

नाम अमर हो सकता कैसे, यदि न प्रतिष्ठा रहे काम की।
काम करो निष्काम भाव से, नहीं कामना करो नाम की।।

जग में नहीं प्रशंस्य हुआ है
बुरे काम से नाम कमाना,
नाम किया रावण–हिटलर ने,
थूँक रहा है उन्हें जमाना,

छोड़ असत्, सत् ओर चलो तुम, करो न चिन्ता शीत–घाम की।
काम करो निष्काम भाव से, नहीं कामना करो नाम की।।

सत्य–न्याय–सद्भाव–स्नेह की
जिसने जगमग ज्योति जगायी,
उसका ही तो नाम अमर है,
उसकी महिमा जग ने गायी,

प्राप्त हुई उसको जीवन में अनुकम्पा आनन्द–धाम की।
काम करो निष्काम भाव से, नहीं कामना करो नाम की।।

सावधान, अभिमान करो मत,
यह जीवन तो एक समर है,
जिसने काम किया परहित में,
नाम उसी का हुआ अमर है,

धन्य वही 'मधुरेश' लोक में जिसने पायी शरण राम की।
काम करो निष्काम भाव से, नहीं कामना करो नाम की।।

संघर्षों से मत हार सखे!

जीवन संघर्षों का संगम, संघर्षों से मत हार सखे!
चाहे जैसे भी दुर्दिन हों, अपने मन को मत मार सखे!!

मानव–तन–जीवन का जग में
दो–चार दिनों का खेल सदा,
जिसका मन प्यार भरा रहता,
उसका खुशियों से मेल सदा,

है धन्य वही जीवन, जिसमें पल–पल खिलता है प्यार सखे!
जीवन संघर्षों का संगम, संघर्षों से मत हार सखे!!

संतान सभी हैं ईश्वर की,
सब अपने, कोई गैर नहीं,
नित ज्योति प्यार की जगे जहाँ,
टिक सके वहाँ पर वैर नहीं,

सद्भाव–स्नेह के सुमनों से तू कर अपना श्रृंगार सखे!
जीवन संघर्षों का संगम, संघर्षों से मत हार सखे!!

सब पाकर, खाली हाथ वही,
जो आत्मतत्त्व को पा न सका,
वह छूट सका कब बन्धन से
जो पार मोह के जा न सका,

तू प्रेमदेव की अर्चा में कर दे जीवन उपहार सखे!
जीवन संघर्षों का संगम, संघर्षों से मत हार सखे!!

जिसने साधा अपने मन को,
उसको जीवन अनुकूल मिला,
अगनित झंझाओं में भी तो
देखो, हँस–हँसकर फूल खिला,

'मधुरेश' कमल–सम जीवन से तू कर अपना उद्धार सखे!
जीवन संघर्षों का संगम, संघर्षों से मत हार सखे!!

परिवर्तनमय जीवन

मानव–जीवन की जग में नहीं एक कहानी है।
हैं रंग–रूप बहुतेरे, फिर भी ज्यों पानी है।।

कभी बन कर मेघ बरसता,
कभी जम कर हिम हो जाता,
भव–सागर में मानव का
जीवन–जल है लहराता,

परिवर्तनमय गति इसकी जानी–पहचानी है।
मानव–जीवन की जग में नहीं एक कहानी है।।

कभी फूल खुशी के खिलते,
आती हैं मस्त बहारें,
कभी घोर दुखों के दुर्दिन,
पड़ती है पल–पल मारें,

चलती न सदैव किसी की जग में मनमानी है।
मानव–जीवन की जग में नहीं एक कहानी है।।

जिसने भी जन्म लिया है,
पड़ता है उसको जाना,
बस, कर्म साथ में जाते,
नहीं कोई माल–खजाना,

जाये न बुढ़ापा आ कर, रुकती न जवानी है।
मानव–जीवन की जग में नहीं एक कहानी है।।

सब दिन न समान किसी के,
है काल बली की माया,
कोई न सदैव अभी तक
इस जग में है रह पाया,

'मधुरेश' काल की महिमा नित नई–पुरानी है।
मानव–जीवन की जग में नहीं एक कहानी है।।

चीर दे तमिस्र-जाल

घोर अंधकार देख क्यों पथिक! उदास है ?
चीर दे तमिस्र–जाल, ज्योति तेरे पास है।।

मानवीय देह का महान धर्म जान ले,
मोह–भ्रांति से न रज्जु को ही सर्प मान ले,
स्वार्थ में परार्थ कर्म का वितान तान ले,
लक्ष्य–प्राप्ति के लिये पुनीत ठान ठान ले,

आत्मशक्ति का विकास ही सही विकास है।
घोर अंधकार देख क्यों पथिक़ उदास है ??

वीर–धीर भाव के समस्त द्वार खोल दे,
सत्य–न्याय के लिये सदैव प्राण–मोल दे,
प्रेम की तुला पै मीत! साँस–साँस तोल दे,
शांति–सद्भाव–स्नेह की सुवास घोल दे,

एक परमेश का सभी में नित्य वास है।
घोर अंधकार देख क्यों पथिक! उदास है ??

है मनुष्य–योनि में, मनुष्यता विचार तू,
द्रोह–द्वेष–दर्प–दम्भ–दानवी को मार तू,
नित्य प्रेम–देवता की आरती उतार तू,
हार मत विपत्तियों से, जन्म को सँवार तू,

चारु चिन्तना से चित्त–चौक में उजास है।
घोर अंधकार देख क्यों पथिक! उदास है ??

धन्य है वही, जो दीप–धर्म को निभा गया,
प्रेम के प्रकाश से सभी जनों को भा गया,
देशभक्ति के अभीत गीत नित्य गा गया,
धन्य वही विन्दु, जो कि सिन्धु में समा गया,

नित्य 'मधुरेश' वही धर्म का विलास है।
घोर अंधकार देख क्यों पथिक! उदास है ??

बिना आत्मविश्वास न संभव

नित्य आत्मविश्वास सभी का करता है उद्धार।
बिना आत्मविश्वास न खुलते लक्ष्य–सिद्धि के द्वार।।

जिसके जीवन में जगमग है
नित्य आत्मविश्वास,
वह ही कर सकता है जग में
अपना पूर्ण विकास,

विविध विघ्न–बाधाओं से भी वह न मानता हार।
नित्य आत्मविश्वास सभी का करता है उद्धार।।

बिना आत्मविश्वास न संभव
कभी आत्मसंधान,
उसमें ही तो नित्य निहित हैं
सभी ज्ञान–विज्ञान,

यही मनीषी जन के सपने करता है साकार।
नित्य आत्मविश्वास सभी का करता है उद्धार।।

किया आत्मविश्वास, सिंधु को
लाँघ गये हनुमान,
वही आत्मविश्वास जगाकर
अर्जुन बना महान,

अटल आत्मविश्वास सभी के संशय का उपचार।
नित्य आत्मविश्वास सभी करता है उद्धार।।

जागे मानव के जीवन में
मंगलमय आलोक,
हरे आत्मविश्वास सभी के
सारे संकट – शोक,

नहीं आत्मविश्वास तुल्य है उन्नति का आधार।
नित्य आत्मविश्वास सभी का करता है उद्धार।।

कर अपना उद्धार स्वयं

ओ मानव! तू अपने से ही कर अपना उद्धार स्वयं।
यदि चाहे तू प्यार सभी से, तो सबको कर प्यार स्वयं।।

भौतिक तन–जीवन से ऊपर
अपने को पहचान जरा,
तोड़ इन्द्रियों के बन्धन को
करे आत्म–संधान जरा,

नित्य सत्य परमात्म–तत्त्व से जोड़ स्वयं के तार स्वयं।
ओ मानव! तू अपने से ही कर अपना उद्धार स्वयं।।

आत्मलोक के बिना किसी को
और कहीं सुख–ठौर नहीं,
तेरे सुख–दुख का कारण तो
केवल तू है, और नहीं,

कर्म–प्रधान सृष्टि है सारी, करके देख विचार स्वयं।
ओ मानव! तू अपने से ही कर अपना उद्धार स्वयं।।

नहीं स्वयं को जान सका, तो
पाया सच्चा ज्ञान कहाँ,
आत्मज्योति यदि नहीं जगी, तो
हुआ आत्म–उत्थान कहाँ,

मेरा–तेरा को तज करके खोल प्रेम का द्वार स्वयं।
ओ मानव! तू अपने से ही कर अपना उद्धार स्वयं।।

अहंकार के घटाटोप में
नहीं सूझता सुपथ तुझे,
मायामय वासना–लोक का
सदा सुहाता कुपथ तुझे,

केवल तू ही कर सकता है अपना सहज सुधार स्वयं।
ओ मानव! तू अपने से ही कर अपना उद्धार स्वयं।।

यहाँ-वहाँ मत डोल

यहाँ–वहाँ मत डोल प्यारे! जहाँ–तहाँ मत डोल।
पल–पल गलता चला जा रहा जीवन–घट अनमोल।।

द्रोह–द्वेष में क्यों जलता है,
अँकड़–अँकड़ कर क्यों चलता है,
खलता के पथ पर चल करके
तू जन–मन को क्यों खलता है,

चले सुपथ पर, तभी मिलेगा साँस–साँस का मोल।
यहाँ–वहाँ मत डोल प्यारे! जहाँ–तहाँ मत डोल।।

जीवन कुछ साँसों का खेला,
चार दिनों का ही सब मेला,
आया है इस लोक अकेले,
जायेगा उस लोक अकेला,

तब क्यों अपने अहंकार के पीट रहा तू ढ़ोल ?
यहाँ–वहाँ मत डोल प्यारे! जहाँ–तहाँ मत डोल।।

जिसने नहीं स्वयं को जाना,
रहा कर्म करता मनमाना,
सदा तानता तान पाप के,
उसको अंत पड़ा पछताना,

सहज सरल बन जन–जीवन में द्वार प्रेम के खोल।
यहाँ–वहाँ मत डोल प्यारे! जहाँ–तहाँ मत डोल।।

बन करके माया का चेरा,
क्यों करता तू मेरा–तेरा,
कोई यहाँ न बच पाता है,
सबकी मौत लगाती फेरा,

शान्ति–स्नेह–सद्भाव–सुधा को अन्तस्तल में घोल।
यहाँ–वहाँ मत डोल प्यारे! जहाँ–तहाँ मत डोल।।

उठो पथिक! प्रस्थान करो

क्यों बैठे हो यों मन मारे! उठो पथिक! प्रस्थान करो।
अटल आत्मविश्वास जगाकर चलो, लक्ष्य–संधान करो।।

परम लक्ष्य जीवन का पाना
जग में कोई खेल नहीं,
दीप प्रकाश करेगा कैसे,
यदि उसमें हो तेल नहीं,

उठो, सजग हो कर्मयोग से नित्य नवल उत्थान करो।
क्यों बैठे हो यों मन मारे ? उठो पथिक! प्रस्थान करो।।

दुर्लभ मानव–तन पा कर के
क्यों मिट्टी में मिला रहे,
माथे हाथ धरे? निज मन को
क्यों न सुमन–सा खिला रहे,

चीर निराशा–निशि के तम को अपना विमल विहान करो।
क्यों बैठे हो यों मन मारे ? उठो पथिक! प्रस्थान करो।।

जिसने जीवन जिया दिया–सम,
जग में सच्चा वीर वही,
धीर धरे जो विकट समय में,
जग में सच्चा धीर वही,

बीत गया, सो बीता, अब तो वर्तमान का ध्यान करो।
क्यों बैठे हो यों मन मारे ? उठो पथिक! प्रस्थान करो।।

प्यार स्वयं से करो, डरो मत,
हरो देश के दुख सारे,
नित्यमेव परमार्थ–वृक्ष पर
खिलते–फलते सुख सारे,

उठो अभी 'मधुरेश' मनस्वी बन अपनी पहचान करो।
क्यों बैठे हो यों मन मारे ? उठो पथिक! प्रस्थान करो।।

पावन प्रेम–बिना

मानव के पावन प्रेम–बिना है जीवन में उल्लास कहाँ ?
यदि नहीं रहें वन–उपवन तो फिर धरती पर मधुमास कहाँ ??

दुख भी सुखमय बन जाता है
जब बहता पावन प्रेम–पवन,
सद्भाव–प्रेम की ज्वाला में
हो जाते कटुता–क्लेश हवन,

मानवता के प्रति प्रेम–बिना मानव का हुआ विकास कहाँ ?
मानव के पावन प्रेम–बिना है जीवन में उल्लास कहाँ ??

शुचि प्रीति–लता पर ही खिलते
शुभ शान्ति–सुखों के फूल सदा,
प्रतिकूल जनों के मन में भी
लहरें उठतीं अनुकूल सदा,

केवल छलनामय मृगजल से बुझ सकी किसी की प्यास कहाँ ?
मानव के पावन प्रेम–बिना है जीवन में उल्लास कहाँ ??

जिसके जीवन में प्रेम भरा,
उसका जीवन ही जीवन है,
यदि प्रेम नहीं, तो धरती पर
रम सका भला किस का मन है,

जो मस्त न कर दे तन–मन को, वह मलयवनी वातास कहाँ ?
मानव के पावन प्रेम–बिना है जीवन में उल्लास कहाँ ??

है पुण्य प्रेम ही धरती पर
मानव के मन का रस–साधन,
परमेश स्वयं भी करता है
बस, आत्मप्रेम का आराधन,

'मधुरेश' कभी भी प्रेम–बिना खिलता अधरों पर हास कहाँ ?
मानव के पावन प्रेम–बिना है जीवन में उल्लास कहाँ ??

परहित से ही जगमग रहते

परहित में जो जला जगत में, उसकी महिमा भारी है।
जलता दीपक देख पतिंगा भी होता बलिहारी है।।

परहित में ही नित्य निहित है
मानव का उत्थान सदा,
परहित से ही जगमग रहते
ज्ञान और विज्ञान सदा,

परहित में ही मानवता की प्राण–प्रतिष्ठा सारी है।
परहित में जो जला जगत में, उसकी महिमा भारी है।।

सूर्य–चन्द्र–जल–पवन सभी का
जीवन है उपकार भरा,
स्वयं प्रकृति की श्वास–श्वास में
सबके प्रति है प्यार भरा,

परम ब्रह्म भी परहित में ही होता जग–अवतारी है।
परहित में जो जला जगत में, उसकी महिमा भारी है।।

कहते वेद–पुराण ग्रंथ सब,
जीवन में उपकार करो,
परहित के ही परम यज्ञ से
स्वयं आत्म–उद्धार करो,

सदा सुरों ने भी परहित की शुभ आरती उतारी है।
परहित में जो जला जगत में, उसकी महिमा भारी है।।

जिसने जिया दिया–सम जीवन,
उसका जीवन धन्य हुआ,
धर्मज्योति के फूल खिलाकर
वह दिनमान अनन्य हुआ,

परहितकारी ही सुरपुर में रहने का अधिकारी है।
परहित में जो जला जगत में, उसकी महिमा भारी है।।

उठो, साहसी बनो

उठो, साहसी बनो विश्व में कभी न हिम्मत हारो।
कर्मयोग से भाग्य–भवन को अपने हाथ सँवारो।।

सोना तप कर ही जीवन में
है कुन्दन बन पाता,
बिना कर्म उत्तम लोहा भी
तुच्छ क्षार बन जाता,

जगमग जीवन जीने का ही व्रत जीवन में धारो।
उठो, साहसी बनो विश्व में कभी न हिम्मत हारो।।

जड़तामय हिम तप करके ही
बनता निर्झर – धारा,
सरिता बनकर वही बहा, तो
सागर ने स्वीकारा,

तप–श्रम–कर्मयोग का गौरव जीवन में स्वीकारो।
उठो, साहसी बनो विश्व में कभी न हिम्मत हारो।।

बिना कर्म इस कर्मलोक में
नहीं कहीं कुछ होना,
कर्म–अग्नि से ही इस जग में
जीवन बनता सोना,

तप–जल से ही कर्मदेव के सादर चरण पखारो।
उठो, साहसी बनो विश्व में कभी न हिम्मत हारो।।

सुर–दुर्लभ मानव–तन–जीवन,
इसे करो मत माटी,
धीर–वीर–गंभीर जनों की
वरण करो परिपाटी,

उठो अभय, 'मधुरेश' स्वयं को भवसागर से तारो।
उठो, साहसी बनो विश्व में कभी न हिम्मत हारो।।

मेरा-तेरा

मैं को जान न सका अभी तक, मेरा–तेरा जान रहा हूँ।
मैं अपने को भूल सभी कुछ माया को ही मान रहा हूँ।।

मैं को जाने बिना यथावत्
हो सकता उद्धार कहाँ,
मैं को जाने बिना मोहमय
मिट सकता संसार कहाँ,

मेरा–तेरा को ही मैं तो बारंबार बखान रहा हूँ।
मैं को जान न सका अभी तक, मेरा–तेरा जान रहा हूँ।।

जिसने जाना मैं को, उसके
सदानन्दमय फूल खिले,
मेरा–तेरा–मुक्त जीव को
भवसागर के कूल मिले,

मैं तो मेरा–तेरा के ही नव वितान नित तान रहा हूँ।
मैं को जान न सका अभी तक, मेरा–तेरा जान रहा हूँ।।

मनमानी करता रहता मन
मैं से करता मेल नहीं,
मेरा–तेरा से मुँह मोड़े,
यह बच्चों का खेल नहीं,

मैं पहचान न सका स्वयं को, अग–जग को पहचान रहा हूँ।
मैं को जान न सका अभी तक, मेरा–तेरा जान रहा हूँ।।

'मैं' के हाथों पड़कर ही मैं
पार दुखों के जा न सका,
मेरा–तेरा के मृग–जल में
कभी स्वयं को पा न सका,

इसीलिये 'मधुरेश' मोह के अनुष्ठान मैं ठान रहा हूँ।
मैं को जान न सका अभी तक, मेरा–तेरा जान रहा हूँ।।

उसके जीवन में खिलते हैं

रे मानव! तू अपने हिय में हरि–चरणों को धार।
अहंकार की नाव न करती भवसागर से पार।।

सावधान! अभिमान सदा है
तेरा शत्रु महान,
दुर्लभ तन पाकर तू अपना
परम लक्ष्य पहचान,

मत गतभान रहे, जीवन के दिन तो हैं दो–चार।
रे मानव! तू अपने हिय में हरि–चरणों को धार।।

जग में जो बनकर रहता है
हरि–चरणों की धूल,
उसके जीवन में खिलते हैं
सदा शान्ति–सुख–फूल,

मन–उपवन में वस जाती है सदा वसन्त–बहार।
रे मानव! तू अपने हिय में हरि–चरणों को धार।।

पल–पल गलता ही जाता है
नश्वर तन बलवान,
नहीं रोक पाता है कोई
ज्ञान और विज्ञान,

हरि–शरणागति ही भव–दव का नित्य एक उपचार।
रे मानव! तू अपने हिय में हरि–चरणों को धार।।

और कहीं सुख–शान्ति नहीं है,
वन हो या हो गेह,
नित्य स्वयं परमेश्वर से ही
कर तू सच्चा नेह,

हो करके 'मधुरेश' कमलवत् कर अपना उद्धार।
रे मानव! तू अपने हिय में हरि–चरणों को धार।।

बहे धर्म की धार धरा पर

ओ मानव! मानवता के प्रति कभी नहीं अपमान करो तुम।
सत्कर्मों के ज्योतिकलश से जीवन को द्युतिमान करो तुम।।

आत्मदीप को करो प्रकाशित,
बहे धर्म की धार धरा पर,
उज्ज्वल अविरल अन्तर्मन से
बहे लोकहित प्यार धरा पर,

पुण्य प्रेम के पावन पथ पर जीवन–रथ गतिमान करो तुम।
ओ मानव! मानवता के प्रति कभी नहीं अपमान करो तुम।।

तुम अपनी सद्भाव–सुधा से
जड़ता को भी कर दो जंगम,
सुधी जनों के सुधा–वचन से
हो जन–गण के मन का संगम,

काट अविद्या के सब बन्धन नित्य नवीन विहान करो तुम।
ओ मानव! मानवता के प्रति कभी नहीं अपमान करो तुम।।

ज्ञान–ध्यान–विज्ञान विश्व में
तभी बनेंगे महिमा–मण्डित,
जब इनके तेजस् हाथों से
होवेगी दानवता दण्डित,

स्वाभिमान–रस पान करो, पर; कभी नहीं अभिमान करो तुम।
ओ मानव! मानवता के प्रति कभी नहीं अपमान करो तुम।।

निर्विकार मन से ही कोई
बन सकता है सच्चा मानव,
तन से तो मानव के सम ही
सदा दृष्टिगत होता दानव,

शुभ कर्मों के समाचरण से जीवन का उत्थान करो तुम।
ओ मानव! मानवता के प्रति कभी नहीं अपमान करो तुम।।

ओ भोले मन!

ओ भोले मन! भटक रहे क्यों मायामय संसार में ?
रहो सुखी–सानन्द सर्वदा परमेश्वर के प्यार में।।

परमेश्वर ही इस अग–जग का
एक नित्य आधार है,
मायापति है वही, वही तो
सुख का पारावार है,

सृष्टिलोक की सभी शक्तियाँ हैं उसके अधिकार में।
रहो सुखी–सानन्द सर्वदा परमेश्वर के प्यार में।।

जो सत्–चित्–आनन्द–सघन घन
है नित पावन प्यार का,
मिलता ओर न छोर किसी को
उसके अति विस्तार का,

प्रेमघाट में करो निमज्जन, मत जाओ मझधार में।
रहो सुखी–सानन्द सर्वदा परमेश्वर के प्यार में।।

मरु–जल में कोई भी मन–मृग
बुझा न पाया प्यास को,
माया–ठगिनी ठग लेती है
सहज सरल विश्वास को,

नहीं सदैव बहार मिलेगी माया के बाजार में।
रहो सुखी–सानन्द सर्वदा परमेश्वर के प्यार में।।

चार दिनों के जग–जीवन में
परम सत्य को जान लो,
नित्य एक परमेश–प्रेम को
भली–भाँति पहचान लो,

हो न सके झंकार कभी 'मधुरेश' झूठ के तार में।
रहो सुखी–सानन्द सर्वदा परमेश्वर के प्यार में।।

आज नहीं तो कल

विधि का अटल विधान विश्व में कभी न सकता टल।
सभी शुभाशुभ कर्म फलेंगे, आज नहीं तो कल।।

कर्मों का ही खेल सदा है,
जग में कर्म प्रधान,
हानि–लाभ सुख–दुख यश–अपयश
सब में कर्म–विधान,

विना कर्म के चक्र सृष्टि का कभी न सकता चल।
सभी शुभाशुभ कर्म फलेंगे आज नहीं तो कल।।

मानवता ही परम कर्म है,
मानवता ही धर्म,
मानवता में नित्य निहित है
सबका रक्षा–वर्म

महापाप है मानवता से करना कोई छल।
सभी शुभाशुभ कर्म फलेंगे आज नहीं तो कल।।

विधि का लेख बना करता है
सदा कर्म–अनुसार,
विधि के यहाँ नहीं चल पाता
कोई भ्रष्टाचार,

कर्म–ज्योति से जीवन जगमग होता है प्रतिपल।
सभी शुभाशुभ कर्म फलेंगे आज नहीं तो कल।।

देह नहीं कोई भी जग में
मानव–देह–समान,
मानव–कुल का महा पतन है
जीवन में अभिमान,

रहो सदा 'मधुरेश' लोक में बनकर गोमुख–जल।
सभी शुभाशुभ कर्म फलेंगे आज नहीं तो कल।।

मानवता की ओर

सब को तभी सुधार सको, जब खुद को स्वयं सुधारो तुम।
जीवन का जो परम तथ्य है, उसे सहज स्वीकारो तुम।।

यह जग है ईश्वर की लीला,
उसका ही सब खेल यहाँ,
उसकी ही इच्छा से होता
सबका सबसे मेल यहाँ,

आत्मधर्म–परमात्मधर्म को ही जीवन में धारो तुम।
सब को तभी सुधार सको, जब खुद को स्वयं सुधारो तुम।।

जब–तक जले न तेल दीप का,
तब–तक है उल्लास कहाँ,
जिसने जीवन जिया दिया–सम,
उसका सही विकास यहाँ,

सबके घर–भवनों से पहले अपना भवन बुहारो तुम।
सब को तभी सुधार सको, जब खुद को स्वयं सुधारो तुम।।

सद्कर्मों की ज्योति जगा कर
मानवता की ओर चलो,
'पर उपदेश कुशल बहुतेरे',
इस साँचा में नही ढलो,

पहले स्वयं तरो भवसागर, तब अपरों को तारो तुम।
सब को तभी सुधार सको, जब खुद को स्वयं सुधारो तुम।।

यदि मन में मद–मत्सर–ईर्ष्या
घोर मोह–अभिमान भरा,
तो चाहे जो भी हो, उसमें
है अनर्थ–अज्ञान भरा,

सत्य–धर्म की राह छोड़कर, गुरुडम नहीं सँवारो तुम।
सब को तभी सुधार सको, जब खुद को स्वयं सुधारो तुम।।

मन का सुमन

मन का सुमन खिला लो भाई! मन का सुमन खिला लो।
मानव हो तुम, मानवता से मन के तार मिला लो।।

पी कर महा मोह–मद–मदिरा
तुम क्यों ऐंठे जाते,
करो प्रेम तुम सदा सभी से
मानवता के नाते,

सदा सत्य–सद्भाव–स्नेह के उपवन को तुम पालो।
मन का सुमन खिला लो भाई! मन का सुमन खिला लो।।

अभी नहीं चेते, तो तुमको
फिर होगा पछताना,
साथ नहीं जायेगा कोई
साथी, माल–खजाना,

अभी समय है, चलो सुपथ पर, सच्चा धर्म कमा लो।
मन का सुमन खिला लो भाई! मन का सुमन खिला लो।

मतवाले बन कर जो रहते
रावण के मत वाले,
दाल नहीं गलती, जब पड़ते
महाकाल के पाले,

नित्य एक परमेश राम में अपना चित्त रमा लो।
मन का सुमन खिला लो भाई! मन का सुमन खिला लो।।

इस दुनिया में सबको मिलता
चार दिनों का मेला,
कभी एक दिन त्याग सभी कुछ
उड़ता हंस अकेला,

बीता, सो 'मधुरेश' भूल कर, आगे होश सँभालो।
मन का सुमन खिला लो भाई! मन का सुमन खिला लो।।

पाप-मूल अभिमान

अहंकार–अहि मानव–मन को भली–भाँति लेता है डँस।
बिना सुमति–सद्भाव–शान्ति के कहीं नहीं है जीवन–रस।।

अहंकार मानव के दुर्लभ
जीवन का हर लेता मोल,
घर–बाहर में अहंकार ही
भीषण विष है देता घोल,

अहंकार–अहि सिद्धि–साधना, सबको ही लेता है ग्रस।
बिना सुमति–सद्भाव–शान्ति के कहीं नहीं है जीवन–रस।।

सब कुछ पा कर भी रावण पर
अहंकार अति हुआ सवार,
मिला धूल में सकुल दसानन
सुख–संपति सब बंटाढार,

सदा–सदा को नष्ट हो गया उसके कुल का गौरव–यस।
बिना सुमति–सद्भाव–शान्ति के कहीं नहीं है जीवन–रस।।

पाप–मूल अभिमान लोक में
नाश–मूल भी है अभिमान,
भीषण भ्रम में अहम्मूढ़ जन
ब्रह्म स्वयं को लेता मान,

अभिमानी के उद्धत मन पर नहीं किसी का चलता वस।
बिना सुमति–सद्भाव–शान्ति के कहीं नहीं है जीवन–रस।।

खिले नहीं जिसके जीवन में
शान्ति–स्नेह के सुरभित फूल,
चाहे कोई भी हो, उसकी
साँसें ही चुभतीं बन शूल,

श्रेय–प्रेय 'मधुरेश' मिलेगा, तन–मन–जीवन सब लो कस।
बिना सुमति–सद्भाव–शान्ति के कहीं नहीं है जीवन–रस।।

जीना है दिन चार

जीना है दिन चार, सदा यह ध्यान रहे।
मन पर कभी सवार नहीं अभिमान रहे।।

भरता है फुंकार नाग–अभिमान सदा,
करता अत्याचार घोर अभिमान सदा,
द्रोह–द्वेष–फन फैला करके रातदिवस
सब पर करे प्रहार क्रूर अभिमान सदा,

सावधान! यह जीवन धर्म–प्रधान रहे।
मन पर कभी सवार नहीं अभिमान रहे।।

मानव–जीवन तो जग में अनमोल सदा,
जब भी बोलो, बोलो मीठे बोल सदा,
दस दिन का व्यवहार, प्यार ही जीवन है,
रखो प्रेम का द्वार हृदय में खोल सदा,

जग में अपनी मानवीय पहचान रहे।
मन पर कभी सवार नहीं अभिमान रहे।।

वह घर नरक–समान, जहाँ पर प्यार नहीं,
मानवता का जहाँ कभी सत्कार नहीं,
वह परिवार भला कैसे सुख पा सकता,
जहाँ परस्पर जन–जन में सहकार नहीं,

सत्य–न्याय–श्रम–संयम का सम्मान रहे।
मन पर कभी सवार नहीं अभिमान रहे।।

यहाँ किसी का नहीं ठिकाना रहा सदा,
जन्म–मरण से आना–जाना रहा सदा,
कोई चाहे लाख उपाय भले कर ले,
नहीं किसी को सुख मनमाना रहा सदा,

जग–जल में यह जीवन कमल–समान रहे।
मन पर कभी सवार नहीं अभिमान रहे।।

उसकी हो सकती हार कहाँ

जिसमें साहस–उत्साह भरा, उसकी हो सकती हार कहाँ ?
है स्वार्थ भरा जिस भी मन में, उस मन में पावन प्यार कहाँ ??

जीवन संघर्षों का संगम,
जीवन जीना है खेल नहीं,
कोल्हू में पेरे बिना कभी
मिल सका तिलों से तेल नहीं,

पतझार बिना जीवन–वन में हो सकी बसन्त–बहार कहाँ ?
जिसमें साहस–उत्साह भरा, उसकी हो सकती हार कहाँ ??

उसकी पौरुष में क्या गिनती,
जो जीवन–रण में हार गया,
पतवार नहीं जिसने पकड़ी,
वह कब सागर के पार गया,

बलिदान–बिना जग–जीवन का हो सकता है उद्धार कहाँ ?
जिसमें साहस–उत्साह भरा, उसकी हो सकती हार कहाँ ??

जो बढ़ा अभय निज मंजिल को,
उसको पथ भी अनुकूल मिला,
जिसने परवाह न की कुछ भी,
तो शूलों में भी फूल खिला,

मरने से डरने वाले को है जीने का अधिकार कहाँ ?
जिसमें साहस–उत्साह भरा, उसकी हो सकती हार कहाँ ??

उसका जीना ही जीना है,
जिसका जीवन परमार्थ भरा,
सम्मान नहीं मिलता उसको,
जो केवल निर्मम स्वार्थ भरा,

जो एक सूत में बँध न सके, वह बन सकता उरहार कहाँ ?
जिसमें साहस–उत्साह भरा, उसकी हो सकती हार कहाँ ??

मन का ही सब खेल

मन के जीते जीत जगत में, मन के हारे हार सदा।
मन मारे क्या जीना ? मन को रखना सदाबहार सदा।।

मन मानव की महाशक्ति है,
मन का ही सब खेल यहाँ,
मन के बिना नहीं हो सकता
कभी किसी का मेल यहाँ,

मन ही तो साधना–सिद्धि का होता है आधार सदा।
मन मारे क्या जीना ? मन को रखना सदाबहार सदा।।

मन से ही परलोक–लोक के
बनते हैं सम्बन्ध सभी,
मन यदि सुमन–समान खिले तो
पाते सदा सुगन्ध सभी,

मन न लगे, तो बन जाता है सारा जीवन भार सदा।
मन मारे क्या जीना ? मन को रखना सदाबहार सदा।।

मन को कर बलवान विश्व में
सुजन महा महिमान बने,
मन के महाभाव से ही तो
महावीर हनुमान बने,

चाहो परमेश्वर को यदि, तो करो सभी से प्यार सदा।
मन मारे क्या जीना ? मन को रखना सदाबहार सदा।।

कठिन साधना चंचल मन की,
जो साधे, है वीर वही,
मन को मुट्ठी में रखता जो,
सच्चा सन्त–फकीर वही,

होगे भव के पार एक दिन, मन का करो सुधार सदा।
मन मारे क्या जीना ? मन को रखना सदाबहार सदा।।

कुछ तो करो विचार

क्यों करते अभिमान लोक में, कुछ तो करो विचार।
इस क्षण–भंगुर नश्वर तन का जीवन है दिन चार।।

तन–धन–भवन स्वजन–परिजन का
क्यों करते अभिमान,
स्नेह–शील–सद्भाव नहीं, तो
व्यर्थ ज्ञान – विज्ञान,

अहा! लोक में धन्य वही है, जिसका मन समुदार।
क्यों करते अभिमान लोक में, कुछ तो करो विचार।।

सोचो, अंतिम समय तुम्हारे
क्या जायेगा साथ,
गया सिकन्दर भी दुनिया से
खाली दोनो हाथ,

जिसने जीवन जिया दर्प में, वह धरती का भार।
क्यों करते अभिमान लोक में, कुछ तो करो विचार।।

मानवता के विना व्यर्थ है
मानव का उत्थान,
मानवता में ही रमते हैं
परमेश्वर भगवान,

मानवता से ही खुल जाते स्वयं स्वर्ग के द्वार।
क्यों करते अभिमान लोक में, कुछ तो करो विचार।।

सत्य–स्नेह–सद्भाव–अहिंसा
मानवता के मूल,
सच्चा मानव मानवता को
कभी न सकता भूल,

मानवता से ही संभव है मानव का उद्धार।
क्यों करते अभिमान लोक में, कुछ तो करो विचार।।

हिम्मत कभी न हारो मन!

चाहे जैसे भी दिन आयें, सबको ही स्वीकारो मन!
चाहे लाख पड़ें विपदायें, हिम्मत कभी न हारो मन!!

परिवर्तन ही सृष्टि–नियम है,
रुका कहाँ–कब परिवर्तन,
कुछ को कुछ कर देता पल में
परिवर्तन का परिवर्तन,

परिवर्तन के नियत चक्र को अनुदिन अंगीकारो मन!
चाहे जैसे भी दिन आयें, सबको ही स्वीकारो मन!!

दुख के बाद स्वयं सुख आता,
सब कुछ लगता है सुखमय,
कुछ भी सदा कहाँ रुक पाता,
जीवन बन जाता गतिमय,

सदा सहज निर्द्वन्द्व भाव को तुम अपने में धारो मन!
चाहे जैसे भी दिन आयें, सबको ही स्वीकारो मन!!

दुर्लभ जीवन के क्षण–क्षण को
करो सहज ही प्यार सदा,
जहाँ हुआ पतझार, वहीं पर
हुई वसन्त–बहार सदा,

नित्य सत्य परिवर्तन–रस से जीवन सहज सँवारो मन!
चाहे जैसे भी दिन आयें, सबको ही स्वीकारो मन!!

घर से निकल विकल क्यों होते,
सुन लो सरिता का कल–कल,
चलते–चलते पा जाती वह
सुखमय सागर का अंचल,

सदा मुदित 'मधुरेश' नियति की शुभ आरती उतारो मन!
चाहे जैसे भी दिन आयें, सबको ही स्वीकारो मन!!

उसने वैसा ही फल पाया

जिसकी जैसी करनी जग में, उसने वैसा ही फल पाया।
यही स्वयं भगवान कृष्ण ने श्रीमुख से गीता में गाया।।

शुचि श्रद्धा–विश्वास–समर्पण
जिसके जीवन का है संबल,
उसको, प्रभु की अनुकम्पा से
मिलते हैं जीवन में शुभ फल,

नहीं कभी भरमाती उसको ईश्वर की छलनामय माया।
जिसकी जैसी करनी जग में, उसने वैसा ही फल पाया।।

होता कर्म प्रधान जगत में,
कर्म–बिना तो कैसा जीवन,
सदा सहज सत्कर्मों से ही
जीवन बन पाता संजीवन,

करके नित परमार्थ, धन्य हो जाती है यह नश्वर काया।
जिसकी जैसी करनी जग में, उसने वैसा ही फल पाया।।

सूक्ष्म कर्म–सूत्रों का ही यह
जग–जीवन है ताना–बाना,
कर्मों से ही तो होता है
स्वर्ग–नरक में जाना–आना,

सारा सृष्टि–रहस्य विश्व का कर्मों में ही सदा समाया।
जिसकी जैसी करनी जग में, उसने वैसा ही फल पाया।।

कर्मों ने ही रचा लोक में
पुण्य–पाप की चिर परिभाषा,
पुण्यों से ही पूरी होती
जीवन में सुख की अभिलाषा,

किन्तु; नहीं 'मधुरेश' सभी ने जग में पुण्य कर्म अपनाया।
जिसकी जैसी करनी जग में, उसने वैसा ही फल पाया।।

धन्य वही मानव

धन्य उसी मानव का जीवन, धन्य लोक–व्यवहार रे!
धन्य वही मानव, जो जग में हरि से करता प्यार रे!!

केवल हरि ही सदा–सर्वदा
सत्–चित्–आनँदधाम है,
हरि तो सबके कर्ता–भर्ता
परमेश्वर का नाम है,

हरि ही तो है नित्य–निरन्तर सभी सुखों का सार रे!
धन्य वही मानव, जो जग में हरि से करता प्यार रे!!

जो अभिमानी परम तत्त्व को
नहीं यथावत् जानता,
वह ही अपने को सर्वेश्वर
महा महिम है मानता,

अगम–अपार परम प्रभु हरि का कौन पा सका पार रे!
धन्य वही मानव, जो जग में हरि से करता प्यार रे!!

देखो जहाँ, वहीं पर हरि का
इस अग–जग में मेल है,
हरि तो जैसे तेज आग में
और तिलों में तेल है,

हरि ही सारे जड़–चेतन का एकमेव आधार रे!
धन्य वही मानव, जो जग में हरि से करता प्यार रे!!

हरि का रंग–प्रभाव जगत में
देख सके, तो देख रे,
हरि के बिना न बने किसी की
जग में जीवन–रेख रे,

हरि ही से 'मधुरेश' लोक सब रहता सदाबहार रे!
धन्य वही मानव, जो जग में हरि से करता प्यार रे!!

सोना तो केवल सोना

सुख–शान्ति नहीं है सोना में, सोना तो केवल सोना है।
हरि के चरणों से प्रेम करो, जग में यदि सुख से सोना है।।

सोना नयनों का आकर्षण,
आकर्षण लोभ जगाता है,
सोना ही पाने को मानव
निशिवासर जुगत लगाता है,

सोना के वशीभूत होकर अंतिम फल केवल रोना है।
सुख–शान्ति नहीं है सोना में, सोना तो केवल सोना है।।

खल हिरण्याक्ष की आँखों में
केवल सोना ही वसता था,
सोना ही हिरण्यकश्यप को
अपनी जकड़न में कसता था,

सोना की शय्या पर सदैव सुख–शान्ति सभी कुछ खोना है।
सुख–शान्ति नहीं है सोना में, सोना तो केवल सोना है।।

सोने की लंका पा कर के
रावण को अति अभिमान हुआ,
जीवन भर वह बेचैन रहा,
औ' वंश सहित अवसान हुआ,

सोने का लोभ बढ़ा करके केवल काँटे ही बोना है।
सुख–शान्ति नहीं है सोना में, सोना तो केवल सोना है।।

होता है सोने का न हिरन,
फिर भी सीता को लोभ हुआ,
उस स्वर्णिम मृग के लालच से
आजीवन उनको क्षोभ हुआ,

सोना का लालच तो सदैव दुख–चिन्ता को ही ढोना है।
सुख–शान्ति नहीं है सोना में, सोना तो केवल सोना है।।

वह तो पत्थर है

वे नयन नहीं, जिन नयनों से परदुख में झरता नीर नहीं।
वह तो पत्थर है, हृदय नहीं, जिसमें परदुख की पीर नहीं।।

जग में वह ही सच्चा मानव,
जिसमें मानवता का धन है,
सद्धर्म–प्रेम की किरणों से
ज्योतिर्मय जिसका जीवन है,

जो हो न सका कर्तव्यधीर, वह जग में सच्चा धीर नहीं।
वह तो पत्थर है, हृदय नहीं, जिसमें परदुख की पीर नहीं।।

है धन्य वही, जो जीवन में
निज मातृभूमि का मान रखे,
जो राष्टदेव की पूजा में
देशाभिमान का ध्यान रखे,

जो पीठ दिखा दे दुश्मन को, जग में वह सच्चा वीर नहीं।
वह तो पत्थर है, हृदय नहीं, जिसमें परदुख की पीर नहीं।।

होते हैं बीन–सितार व्यर्थ
मनमोहक मृदु झंकार विना,
जीने से मरना अच्छा है
जीवन में पावन प्यार विना,

पर सेवा, पर–उपकार विना होता है धन्य शरीर नहीं।
वह तो पत्थर है, हृदय नहीं, जिसमें परदुख की पीर नहीं।।

धरती पर सबको रहना है,
सब का कुछ दिन ही वास यहाँ,
जिसमें मानवता का विकास,
उसका ही सही विकास यहाँ,

'मधुरेश' किसी की यह धरती होती सदैव जागीर नहीं।
वह तो पत्थर है, हृदय नहीं, जिसमें परदुख की पीर नहीं।।

बंजारा मन

माया–वन में भटक रहा है बन बंजारा मन।
माया के वश होकर फिरता मारा–मारा मन।।

भोले मानव–मन को जग में
भरमाती है माया,
इस माया के मोह–जाल में
चैन किसे मिल पाया,

बहुत भटकता, किन्तु न पाता कहीं सहारा मन।
माया–वन में भटक रहा है बन बंजारा मन।।

मायापति की छाया माया
लगती बहुत सुहानी,
किन्तु नित्य रस कभी न उसमें,
केवल सुखद कहानी,

फिर भी उसको ही पाने को कभी न हारा मन।
माया–वन में भटक रहा है बन बंजारा मन।।

रस–लोलुप मन रस पाने को
रात – दिवस अकुलाता,
रमता वहीं, जहाँ पल दो पल
राग – रंग – रस पाता,

किन्तु, न रुकता एक ठौर पर यह बेचारा मन।
माया–वन में भटक रहा है बन बंजारा मन।।

जब–तक नहीं आत्मरस मिलता,
तब – तक मन है रोगी,
मन–सा और न भोगी कोई,
मन – सा और न योगी,

पाता है 'मधुरेश' प्रेम में रस–धन सारा मन।
माया–वन में भटक रहा है बन बंजारा मन।।

तभी मिलेगा समुचित फल

जो करना है, करो समय पर, तभी मिलेगा समुचित फल।
कल–कल करते जाने कितने निकल गये जीवन के कल।।

समय सदा गतिमान लोक में,
परिवर्तनमय है संसार,
समय–पटल पर बहती रहती
अविरल जीवन–जल की धार,

आत्मा एक अटल अग–जग में सब कुछ है प्रतिपल चंचल।
जो करना है, करो समय पर, तभी मिलेगा समुचित फल।।

नश्वर तन–धन–यौवन–बल पर
कोई क्यों करता अभिमान,
चाहे कोई भी हो, सब का
अटल एक दिन है अवसान,

छोटे–से इस जग–जीवन में कोई क्यों बनता है खल ?
जो करना है, करो समय पर, तभी मिलेगा समुचित फल।।

जिसके जीवन में न कभी भी
खिलते मानवता के फूल,
उसकी भौतिक संपति–उन्नति
सभी एक दिन होते धूल,

परहित जिसके मन में, उसका जीवन जैसे गंगा–जल।
जो करना है, करो समय पर, तभी मिलेगा समुचित फल।।

छोड़ असत्, सत् को जीवन में
जो भी जन करता स्वीकार,
उसको मिलता परमेश्वर का
चिदानन्दमय पावन प्यार,

रहो सदा 'मधुरेश' ऊर्ध्वमुख, जल में जैसे रहे कमल।
जो करना है, करो समय पर, तभी मिलेगा समुचित फल।।

मनुजता से प्यार कर

मनुज है यदि, तो मनुज! तू मनुजता से प्यार कर।
प्यार से ही लोक में उरतार की झनकार कर।।

धन्य होता है सभी का
जन्म–जीवन प्यार से,
द्वार खुलता स्वर्ग का भी
पुण्य पावन प्यार से,

प्यार–सौरभ का सदा संसार में संचार कर।
मनुज है यदि, तो मनुज! तू मनुजता से प्यार कर।।

प्यार ही दुख–दोष का भी
शुचि सहज उपचार है,
प्यार ही सबके लिये सौ
सौ सुखों का सार है,

कपट–कटुता–क्लेश का तू नित्य ही परिहार कर।
मनुज है यदि, तो मनुज! तू मनुजता से प्यार कर।।

सत्य–सेवा–प्रेम–करुणा
मनुजता के मूल हैं,
मनुजता से स्वर्ग के भी
सुलभ सब फल–फूल हैं,

धन्य जीवन के लिये तू मनुजता स्वीकार कर।
मनुज है यदि, तो मनुज! तू मनुजता से प्यार कर।।

मनुजता जिसमें नहीं, वह
घोर पशु–शैतान है,
मनुजता में ही सदा
ईमान है, भगवान है,

मनुजता से कमल–सम 'मधुरेश' निज उद्धार कर।
मनुज है यदि, तो मनुज! तू मनुजता से प्यार कर।।

स्वयं सँवर जायेगा कल

कल की चिन्ता क्यों करते हो, क्या जानें, क्या होगा कल।
वर्तमान को आज सँवारो, स्वयं सँवर जायेगा कल।।

दुर्लभतम मानव–तन–जीवन
परमेश्वर की भेंट महान,
त्याग सभी परपंच मोहमय,
बन सकता है यह वरदान,

विधि का अटल विधान विश्व में नहीं कभी सकता है टल।
वर्तमान को आज सँवारो, स्वयं सँवर जायेगा कल।।

जिसने साधा वर्तमान को,
उसका वाँक्षित आया हाथ,
पल का नहीं ठेकाना, कोई
कैसे कल दे सकता साथ,

करो सार्थक पल–पल को तुम, व्यर्थ न जाये कोई पल।
वर्तमान को आज सँवारो, स्वयं सँवर जायेगा कल।।

सत्य–न्याय–करुणा–सेवा ही
मानव–जीवन की शुभ राह,
निरभिमान निश्छल जीवन में
रहे प्रवाहित प्रेम–प्रवाह,

छलनी होता उसका जीवन, जो अपरों से करता छल।
वर्तमान को आज सँवारो, स्वयं सँवर जायेगा कल।।

वह कैसा मानव ? पर–दुख से
कभी न छलके जिसके नैन,
जिसके मुख से कभी न निकले
स्नेहिल–सरस सुधा–सम बैन,

मानवता ही मानव–तन का है 'मधुरेश' सदा शुभ फल।
वर्तमान को आज सँवारो, स्वयं सँवर जायेगा कल।।

मानव वही महान

जो मन में ही हार गया, वह जीवन–रण में हार गया।
धन्य वही, जो जन–जीवन में करके शुभ उपकार गया।।

वैसे तो यह धरती सब को
अपने उर पर धरती है,
किन्तु गर्व तो सज्जन पर ही
अपने मन में करती है,

सज्जन वही, सदा जो जग में खोल पुण्य का द्वार गया।
धन्य वही, जो जन–जीवन में करके शुभ उपकार गया।।

मानव वही महान यहाँ पर,
जो है मानव–मन वाला,
धनी वही, जो पुण्य ज्योतिमय
जगमग जीवन–धन वाला,

जीवन धन्य उसी का, जो कर मानवता से प्यार गया।
धन्य वही, जो जन–जीवन में करके शुभ उपकार गया।।

जो भी जन्मा जीव जगत में,
उसको निश्चय मरना है,
जब मरना है अटल यहाँ, तो
मरने से क्या डरना है,

मरा नहीं वह, जो जीवन में करके निज उद्धार गया।
धन्य वही, जो जन–जीवन में करके शुभ उपकार गया।।

'चरैवेति', यह मंत्र महत्तम,
जो जग में अपनाता है,
वही मनस्वी मनुज एक दिन
मंजिल को पा जाता है,

धन्य वही, भव–सिंधु तरा जो, औरों को भी तार गया।
धन्य वही, जो जन–जीवन में करके शुभ उपकार गया।।

मानवता ही धर्म

ना हम हिन्दू, ना हम मुस्लिम, ना सिख ना क्रिस्तान।
मानवता को मान बनेंगे हम अच्छे इंसान।।

हम मानव हैं, हम सबका है
मानवता ही धर्म,
मानवता से बढ़ कर कोई
और नहीं शुभ कर्म,

मानवता ज्योतित हो जिससे, वही मनुष्य महान।
मानवता को मान बनेंगे हम अच्छे इंसान।।

मानवता के विना व्यर्थ हैं
मत–मजहब के बोल,
ढोल बजाते अहंकार के,
देते हैं विष घोल,

मानवता ही जग में सच्चे मानव की पहचान।
मानवता को मान बनेंगे हम अच्छे इंसान।।

करके विमल विवेक देख लो
परमेश्वर है एक,
भिन्न–भिन्न भाषाओं में हैं
उसके नाम अनेक,

उसी एक परमेश्वर का ही करते वेद बखान।
मानवता को मान बनेंगे हम अच्छे इंसान।।

क्यों करते अभिमान ? लोक में
जीवन दिन दो – चार,
दानवता है निरपराध पर
करना अत्याचार,

है अधिकार यहाँ जीने का सबको एक समान।
मानवता को मान बनेंगे हम अच्छे इंसान।।

किसका कौन हुआ?

किसको कहूँ गैर मैं जग में किसे कहूँ अपना ?
माटी का तन माटी में ही सबका है खपना ।।

जग–जीवन दो–चार दिनों का
सबको यहाँ मिला,
धन्य वही जन, सुमन–सरीखा
जिसका सुमन खिला,

मानवता का महामंत्र ही सबको है जपना।
किसको कहूँ गैर मैं जग में किसे कहूँ अपना ??

दुनिया के संबन्ध, अंत में
किसका कौन हुआ,
प्राण–पखेरू उड़ा देह से,
जन–जन मौन हुआ,

धन–संपत्ति सभी यों छूटे, जैसे सुख–सपना।
किसको कहूँ गैर मैं जग में किसे कहूँ अपना ??

किये शुभाशुभ कर्म यहाँ जो,
वे ही साथ गये,
नर हों या कि नरेश, देह तज
खाली हाथ गये,

काल–अग्नि के बीच न किसको पड़ता है तपना ?
किसको कहूँ गैर मैं जग में किसे कहूँ अपना ??

महा मोह–मद–मदिरा पी कर
जो जग – जीव जिया,
उसने स्वयं भयंकर धोखा
अपने साथ किया,

अटल मृत्यु 'मधुरेश' यहाँ, तो काहे को कँपना ?
किसको कहूँ गैर मैं जग में किसे कहूँ अपना ??

उसका क्या कहना

जिसकी करनी नहीं धर्म के हित में होती है।
उसको धारण कर यह धरती केवल रोती है।।

सत्य–प्रेम–सेवा–करुणा के
फूल जहाँ खिलते,
सदा वहीं सद्धर्म–वृक्ष के
सुफल सभी मिलते,

जिसकी मति सद्धर्म–कर्म के पथ पर सोती है।
उसको धारण कर यह धरती केवल रोती है।।

लोभ–मोह–मद की धारा में
जो भी जन बहता,
उसका जीवन नहीं कभी भी
सुखी – शान्त रहता,

जिसकी करनी सदा लोक में काँटे बोती है।
उसको धारण कर यह धरती केवल रोती है।।

जो भी जिया दिया–सम जीवन,
उसका क्या कहना,
वह तो बनता मानवता का
मंगलमय गहना,

जिसकी गतिविधि सदा पाप की गठरी ढोती है।
उसको धारण कर यह धरती केवल रोती है।।

मानवता से बढ़ कर कोई
धर्म नहीं जग में,
दानवता से बढ़ कर और
कुकर्म नहीं जग में,

जिसका जीवन नहीं सुमति से बनता मोती है।
उसको धारण कर यह धरती केवल रोती है।।

जीवन है अनमोल

मानव–तन अनमोल जगत में जीवन है अनमोल।
कर से करो सुकर्म उचारो मुख से मीठे बोल।।

कर्मों का सब खेल लोक में,
जीवन कर्म – प्रधान,
सत्कर्मों से ही होती है
मानव की पहचान,

सदा सभी के लिये प्रेम के द्वार रखो तुम खोल।
मानव–तन अनमोल जगत में जीवन है अनमोल।।

तन से, मन से, बचन–कर्म से
हो नित पर – उपकार,
बहे सदा ही साँस–साँस में
पुण्य प्रेम की धार,

सेवा–सत्य–स्नेह–करुणा का रस जग में दो घोल।
मानव–तन अनमोल जगत में जीवन है अनमोल।।

जड़–चेतन में झलक रहा है
परमेश्वर का रंग,
परमेश्वर है सत्य, करो तुम
सदा सत्य का संग,

अर्पण करो कर्म सब प्रभु को प्रेम–तुला पर तोल।
मानव–तन अनमोल जगत में जीवन है अनमोल।।

यदि न खिलाये जग–जीवन में
मानवता के फूल,
तो समझो हो गयी तुम्हारी
सारी उन्नति धूल,

नहीं स्वप्न में भी तुम पीटो अहंकार के ढोल।
मानव–तन अनमोल जगत में जीवन है अनमोल।।

वर्तमान को जियो यथोचित

कल की चिन्ता करो न कुछ भी, करो आज का ध्यान।
वर्तमान को जियो यथोचित, यह ही धर्म महान।।

वर्तमान ही सदा–सर्वदा
रहता अपने हाथ,
क्या जाने, कब–कहाँ छोड़ दें
प्राण किसी का साथ,

कौन काल से जीत सका है ? काल परम बलवान।
वर्तमान को जियो यथोचित, यह ही धर्म महान।।

जीवन में शुभ कर्म–धर्म ही
मानव का कर्तव्य,
जो भी जन्मा जीव जगत में,
अंतिम गति मर्तव्य,

जीवन के इस अटल तथ्य को सब विध लो पहचान।
वर्तमान को जियो यथोचित, यह ही धर्म महान।।

कल–कल करते जाने कितने
निकल गये तिथि–वार,
पल का नहीं ठेकाना, करता
काल सभी पर वार,

तन–धन–जन–यौवन पर करता मोहमूढ़ अभिमान।
वर्तमान को जियो यथोचित, यह ही धर्म महान।।

साँसों तक है साथ सभी का,
क्या अपना ? क्या गैर,
कर्म–बीज बन पुनः उगेंगे,
क्या मैत्री, क्या वैर,

करो सदा 'मधुरेश' प्रेम से जीवन का उत्थान।
वर्तमान को जियो यथोचित, यह ही धर्म महान।।

ओ मेरे मन!

ओ मेरे मन! जीवन–वन में स्नेहिल सुमन खिलाता चल।
पी कर सहज प्रेममय अमरित सबको स्वयं पिलाता चल।।

जीवन कुछ साँसों का संगम,
भंगुर हैं सारे जड़–जंगम,
कभी एक दिन देह छोड़कर
उड़ जायेंगे प्राण–विहंगम,

सावधान हो, अहंकार की गहरी नीव हिलाता चल।
ओ मेरे मन! जीवन–वन में स्नेहिल सुमन खिलाता चल।।

सत् का कर सत्कार सदा तू,
कर परहित–उपकार सदा तू,
चाहे जैसी भी दुविधा हो
हिम्मत को मत हार सदा तू,

दिव्य चेतना से जन–जन के मृतवत् भाव जिलाता चल।
ओ मेरे मन! जीवन–वन में स्नेहिल सुमन खिलाता चल।।

क्यों करता तू मेरा–तेरा,
सबकी मौत लगाती फेरा,
चाहे जो भी हो, इस जग में
नहीं किसी का सदा बसेरा,

प्रेमदेव को अर्घ्य सदा तू देता और दिलाता चल।
ओ मेरे मन! जीवन–वन में स्नेहिल सुमन खिलाता चल।।

सहज नहीं है जग में जीना,
समय पड़े तो विष भी पीना,
अपने कर्मों की कथरी को
पड़ता सदा स्वयं ही सीना,

परम ज्योति से आत्मज्योति को होकर सजग मिलाता चल।
ओ मेरे मन! जीवन–वन में स्नेहिल सुमन खिलाता चल।।

सच्चा इंसान

देश और मानवता के हित जिसका शुभ ईमान है।
चाहे कोई भी हो, जग में वह सच्चा इंसान है।।

सत्य–न्याय–सद्भाव–स्नेह का
अनुष्ठान जो ठानता,
अपने सुख–दुख के समान जो
पर–दुख–सुख को जानता,

जीवन धन्य उसी का, जिसका पर–हित–कर्म–विधान है।
चाहे कोई भी हो, जग में वह सच्चा इंसान है।।

जो समझे पर–पीर, वही तो
सच्चा पीर – फकीर है,
जिसने जीत लिया निज मन को,
वह ही सच्चा वीर है,

जो धन–बल से नहीं, लोक में मन से सदा महान है।
चाहे कोई भी हो, जग में वह सच्चा इंसान है।।

जाति–पंथ–मत–भेद भुला कर
जो जीवन में जागता,
लोभ–मोह–मद–क्रोध–क्रूरता
जो जीवन में त्यागता,

सबके सुख में ही निज सुख का जो करता संधान है।
चाहे कोई भी हो, जग में वह सच्चा इंसान है।।

जो रहता है मस्त सदा ही
मानवता के प्यार में
जिसको है आसक्ति न कुछ भी
मायामय संसार में,

जो मानव 'मधुरेश' सर्वदा सच्चा धर्म–प्रधान है।
चाहे कोई भी हो, जग में वह सच्चा इंसान है।।

क्यों करता अभिमान

पल–पल गलता चला जा रहा तन–यौवन बलवान ।
रे मानव! नश्वर जीवन पर क्यों करता अभिमान ??

यदि न खिलाये सत्कर्मों से
मानवता के फूल,
तो फिर तेरे श्वास चुभेगे
जैसे तीखे शूल,

नहीं मिटाये मिट सकता है विधि का अटल विधान।
रे मानव! नश्वर जीवन पर क्यों करता अभिमान ??

भौतिकता के महामोह में
भटक रहे जो लोग,
उनके भोग खलेंगे बन कर
महा भयंकर रोग,

पी ले प्रेम–अमृत जीवन में क्यों करता विषपान ?
रे मानव! नश्वर जीवन पर क्यों करता अभिमान ??

जिन पर फूला–फूला फिरता
करके ऊँचा माथ,
वे तन–धन–यौवन–जन सब दिन
दे न सकेंगे साथ,

सब कुछ जान–जान कर भी तू क्यों बनता अनजान ?
रे मानव! नश्वर जीवन पर क्यों करता अभिमान ??

सुमन वही होता सम्मानित,
जिसमें सुखद सुगन्धा,
आँख खोलकर देख सत्य को,
क्यों बनता है ? अन्धा,

सत्य–प्रेम–करुणा–सेवा ही मानव की पहचान।
रे मानव! नश्वर जीवन पर क्यों करता अभिमान ??

सुमति के फूल धरता चल

अरे मानव! मनुज बन कर मनुज के काम करता चल।
सदा तू पुण्य कर्मों से धरा को धाम करता चल।।

मिला जो ईश से धन–बल,
कभी अभिमान मत करना,
भुला कर प्रेम का अमृत,
विषम विषपान मत करना,

जहाँ तक हो सके संभव दुखी का दर्द हरता चल।
अरे मानव! मनुज बन कर मनुज के काम करता चल।।

धरा पर देह धारण कर
यहाँ जो जीव आता है,
सभी कुछ एक दिन तज कर
चला चुपचाप जाता है,

अमर तू है, यहाँ दिनरात मरने से न डरता चल।
अरे मानव! मनुज बन कर मनुज के काम करता चल।।

अभागा है वही, जिसने
नहीं भगवान को जाना,
निरा वह अज्ञमति, जिसने
न जीवन–सत्य पहचाना,

सदा तू लोक के पथ पर सुमति के फूल धरता चल।
अरे मानव! मनुज बन कर मनुज के काम करता चल।।

जगा कर प्रेम का दीपक
स्वयं उपकार कर अपना,
कमल–सम ऊर्ध्वगति होकर
स्वयं उद्धार कर अपना,

महा भवसिन्धु को 'मधुरेश' यों दिनरात तरता चल।
अरे मानव! मनुज बन कर मनुज के काम करता चल।।

जिसने मार दिया है मन को

जिसने मार दिया है मन को, वह मर–मर कर जीता है।
घुट–घुट कर वह जीवन–विष को नित्य–निरंतर पीता है।।

मन ही यदि मर गया यहाँ, तो
फिर जीवन में जीना क्या,
जीवन ही यदि विष बन जाये,
तो फिर अमरित पीना क्या,

मन को मार दिया जिसने, वह जीवन–रस से रीता है।
जिसने मार दिया है मन को, वह मर–मर कर जीता है।।

जीवन का है अर्थ न केवल
धन–वैभव–यश पाने में,
जीवन होता धन्य सर्वदा
पुण्य प्रेम–रस पाने में,

प्रेम–बिना तो इस धरती पर सारा ही सुख तीता है।
जिसने मार दिया है मन को, वह मर–मर कर जीता है।।

जिसने भी पी लिया गरल को,
वह अवश्य मर जायेगा,
लेकिन, मन मारे जो जीता,
वह न कभी कल पायेगा,

जिसने जीत लिया है मन को, उसने ही जग जीता है।
जिसने मार दिया है मन को, वह मर–मर कर जीता है।।

दुर्बल नहीं, सबल मन ही तो
जग में कुछ कर पाता है,
कुछ कर पाने वालों का ही
यश सारा जग गाता है,

प्रेम–भरा 'मधुरेश' बली मन रामायण है, गीता है।
जिसने मार दिया है मन को, वह मर–मर कर जीता है।।

निज उद्धार करो

ओ मेरे मन! चलो, दीप–सम सबको प्यार करो।
चाहे जो भी तुम्हें जगा दे, तुम उजियार करो।।

पुण्य प्रेम से बड़ा देवता
जग में और नहीं,
पुण्य प्रेम से बढ़कर सुखमय
कोई ठौर नहीं,

पुण्य प्रेम के ही सुमनों से निज शृंगार करो।
ओ मेरे मन! चलो, दीप–सम सबको प्यार करो।।

जीवन तो दो–चार दिनों का
होता खेल यहाँ,
नदी–नाव–संयोग सभी से
होता मेल यहाँ,

हो सुख या दुख, दोनों को ही तुम उरहार करो।
ओ मेरे मन! चलो, दीप–सम सबको प्यार करो।।

जिसने जगमग जीवन जी कर
जग को हास दिया,
धन्य वही, जिसने पतझर को
नव मधुमास दिया,

जीवन के उपवन में प्रतिपल प्रेम–बहार करो।
ओ मेरे मन! चलो, दीप–सम सबको प्यार करो।।

दीपक को तो सब हैं अपने,
कोई गैर नहीं,
जहाँ स्नेह–सद्भाव, वहाँ पर
रहता वैर नहीं,

आत्म–ज्योति से उद्भसित हो निज उद्धार करो।
ओ मेरे मन! चलो, दीप–सम सबको प्यार करो।।

चिन्ता करो न कल की

वर्तमान में जीना सीखो, चिन्ता करो न कल की।
कल की तो क्या बात, किसी को खबर न होती पल की।।

वर्तमान ही होता सच्चा
साथी – सगा हमारा,
सदा प्रवाहित रहती जग में
समय–सलिल की धारा,

वर्तमान को करो कर्ममय, त्याग दुराशा फल की।
वर्तमान में जीना सीखो, चिन्ता करो न कल की।।

नहीं अतीत पकड़ में आता,
बीत गया, सो बीता,
जिसने वर्तमान को साधा,
उसने जीवन जीता,

धन्य उसी का जीवन, जिसमें गन्ध नहीं है छल की।
वर्तमान में जीना सीखो, चिन्ता करो न कल की।।

कर्म प्रधान विश्व में जिसने
मूल्य समय का जाना,
किया नहीं कर्तव्यकर्म में
उसने कभी बहाना,

मिला उसी को सागर, जिसकी गतिविधि गंगाजल की।
वर्तमान में जीना सीखो, चिन्ता करो न कल की।।

कर्मज्योति जाग्रत कर जिसने
जीवन सफल बनाया,
उसने परम पुण्य पावन पथ
परमेश्वर का पाया,

मिलती है 'मधुरेश' उसे गति उन्नतमुखी कमल की।
वर्तमान में जीना सीखो, चिन्ता करो न कल की।।

कभी एक दिन

इस दुनिया से कभी एक दिन सबको जाना है।
नहीं किसी का सदा के लिये यहाँ ठिकाना है।।

काल परम बलवान, काल से दाल नहीं गल पाती,
राजा हो या रंक, किसी की चाल नहीं चल पाती,
चाल काल की नहीं समझ में कभी किसी को आती,
शत्रु नहीं है काल, सभी का साथी औ' संगाती,

साथ किसी के गया न कोई माल–खजाना है।
इस दुनिया से कभी एक दिन सबको जाना है।।

जो करना है, करो आज ही, कल पर मत टालो,
मायामय इस जग–जीवन में भ्रम को मत पालो,
सत्य–प्रेम के पथ पर अपनी मति–गति को ढालो,
अमल कमल–सम ऊर्ध्वमुखी बन मंजिल को पा लो,

महाकाल से नहीं किसी का चला बहाना है।
इस दुनिया से कभी एक दिन सबको जाना है।।

हुए एक से एक विश्व में ज्ञानी–विज्ञानी,
त्यागी–तपी, घोर अभिमानी, दानी, भटमानी,
लोक–लोक ने जिनकी महिमा जानी–सम्मानी,
किन्तु; किसी की महाकाल ने धाक नहीं मानी,

यह असार संसार सभी के लिये बिराना है,
इस दुनिया से कभी एक दिन सबको जाना है।।

जिसने माया की काया में मन को भरमाया,
जो न कभी परमार्थ–पुण्य–हित कुछ भी कर पाया,
जिसने सत् को छोड़, असत् का पथ ही अपनाया,
उसने जीवन–धन को माटी में ही बिखराया,

धन्य वही, 'मधुरेश' स्वयं को जिसने जाना है।
इस दुनिया से कभी एक दिन सबको जाना है।।

उसका जीना भी क्या जीना ?

उसका जीना भी क्या जीना ? जो जीता मन मार रे!
जीवन तो दो–चार दिनों का एक महा त्योहार रे!!

यह मानव–तन परमेश्वर का
अति दुर्लभ वरदान है,
जो जन–मन का सुमन खिला दे,
मानव वही महान है,

भाग्यवान् का ही मन रहता जग में सदाबहार रे!
उसका जीना भी क्या जीना ? जो जीता मन मार रे!!

मन के हारे हार यहाँ है,
मन के जीते जीत है,
सदा सुपथ पर चलने वाला
मन ही सच्चा मीत है,

उन्नत मन से देवलोक के भी खुल जाते द्वार रे!
उसका जीना भी क्या जीना? जो जीता मन मार रे!!

जैसा मन, वैसा ही जीवन
बन जाता संसार में,
हारे मन की जीवन–नौका
फँस जाती मझधार में,

लोक और परलोक सभी का मन ही है आधार रे!
उसका जीना भी क्या जीना ? जो जीता मन मार रे!!

सदा सत्य–शिव–सुन्दर मन का
जिसमें भी उल्लास है,
उसका ही इस धरा–धाम पर
सच्चा हुआ विकास है,

क्यों न करे 'मधुरेश' सदा तू अपने मन से प्यार रे!
उसका जीना भी क्या जीना ? जो जीता मन मार रे!!

कर अपने को प्यार स्वयं

रे मानव! सद्भाव–सुधा को जन–जन–बीच पिलाता चल।
साँसों के ये हीरे–मोती मिट्टी में न मिलाता चल।।

कर अपना उपचार स्वयं ही,
बन जा तू शीतल चन्दन,
सदा सत्य–शिव–सुन्दर का ही
जीवन में कर अभिनन्दन,

स्नेहिल सुमन सदैव सहज तू जन–वन–बीच खिलाता चल।
रे मानव! सद्भाव–सुधा को जन–जन–बीच पिलाता चल।।

तू ही अपना कर सकता है
अपने से उद्धार स्वयं,
प्यार सभी से कर सकता, यदि
कर अपने को प्यार स्वयं,

सबको, सबसे प्यार सर्वदा देता और दिलाता चल।
रे मानव! सद्भाव–सुधा को जन–जन–बीच पिलाता चल।।

करके माया–सागर–लंघन
मिल सकती है शांति तुझे,
सदा उल्लसित किया करेगी
आत्मतत्त्व की कांति तुझे,

अपने ओछे अहंकार की गहरी नींव हिलाता चल।
रे मानव! सद्भाव–सुधा को जन–जन–बीच पिलाता चल।।

प्रेम–देवता रूठ न जाये
इसका रख तू ध्यान सदा,
प्रेम–बिना बकवास–व्यर्थ हैं
ज्ञान और विज्ञान सदा,

नित्यमेव 'मधुरेश' हृदय के मूर्च्छित भाव जिलाता चल।
रे मानव! सद्भाव–सुधा को जन–जन–बीच पिलाता चल।।

क्या खोया क्या पाया

सोचो, तनिक ठहर कर सोचो, क्या खोया क्या पाया मैंने ?
दुर्लभ मानव–तन पा करके क्या–क्या रतन कमाया मैंने ??

जीवन कुछ साँसों का डेरा,
मौत लगाती प्रतिपल फेरा,
चाहे कोई भी हो, लेकिन
यहाँ न उसका सदा बसेरा,

सोचो तनिक, अभी तक कितना जीवन व्यर्थ गँवाया मैंने ?
सोचो, तनिक ठहर कर सोचो, क्या खोया क्या पाया मैंने ??

चाहे नर हो या हो नारी,
मची सभी में मारामारी,
सबके मन में एक लालसा
मिल जाये सुख–संपति सारी,

सोचो, जीवन से आगे का क्या कुछ जतन बनाया मैंने ?
सोचो, तनिक ठहर कर सोचो, क्या खोया क्या पाया मैंने ??

बन कर क्रूर महा अभिमानी
बात सत्य की कभी न मानी,
साँसों–साँसों में ही सारा
उतर रहा जीवन का पानी,

माया में मन बहुत लगाया, हरि में मन न लगाया मैंने ?
सोचो, तनिक ठहर कर सोचो, क्या खोया क्या पाया मैंने ??

खेल–खेल में बचपन खोया,
भरी जवानी बेसुध सोया,
बीज पुण्य का कभी न बोया,
देख बुढ़ापा के दिन रोया,

गाये गुण दुनियादारी के, हरि–गुण कभी न गाया मैंने ?
सोचो, तनिक ठहर कर सोचो, क्या खोया क्या पाया मैंने ??

काल परम बलवान

काल परम बलवान, काल से सारा जग है हारा।
डाल रहा है जाल, काल बन जीवों का मछुवारा।।

चौरासी लख जीव–जातियाँ
जन्म जगत में पातीं,
महाकाल के महागाल में
किन्तु; समाती जातीं,

कोई कहीं न बचने पाता महाकाल का मारा।
काल परम बलवान, काल से सारा जग है हारा।।

कोई हो ज्ञानी या ध्यानी,
राजा हो या रानी,
महाकाल के आगे सब की
होती बन्द कहानी,

हार गया संसार काल से चला न कोई चारा।
काल परम बलवान, काल से सारा जग है हारा।।

तन–बल, धन, यौवन–जीवन को
कोई बाँध न पाया,
चाहे जो हो, महाकाल ने
सहज सभी को खाया,

अग–जग में बहती है केवल महाकाल की धारा।
काल परम बलवान, काल से सारा जग है हारा।।

खाते–पीते, हँसते–गाते,
सोते, आते – जाते,
कोई भी हों, महाकाल से
कभी नहीं बच पाते,

है 'मधुरेश' अटूट सदा ही महाकाल की कारा।
काल परम बलवान, काल से सारा जग है हारा।।

मृत्युसुन्दरी !

मृत्युसुन्दरी! महामहिम है गौरव सदा तुम्हारा।
चाहे कोई भी हो जग में, लेकिन तुम से हारा।।

बड़े–बड़े ज्ञानी–विज्ञानी
ध्यानी या अभिमानी,
धनी–बली या कोई भी हों,
सबकी एक कहानी,

क्षण में लेती छीन सभी का, तुम, जीवन–धन सारा।
मृत्युसुन्दरी! महामहिम है गौरव सदा तुम्हारा।।

यद्यपि तुम अति दयामयी हो,
सब के दुख हर लेती,
घोर कष्ट–जंजालों से तुम
मुक्त त्वरित कर देती,

तुरत तोड़ देती हो सबके तापत्रय की कारा।
मृत्युसुन्दरी! महामहिम है गौरव सदा तुम्हारा।।

दे तन–वसन पुराना तुमको
जीव धन्य हो जाता,
और शुभाशुभ कर्मफलों से
नवजीवन को पाता,

फिर बहने लगती है उसके पुनर्जन्म की धारा।
मृत्युसुन्दरी! महामहिम है गौरव सदा तुम्हारा।।

वह निर्भय हो जाता, जो भी
मर्म तुम्हारा जाने,
मोहमूढ मायावश मानव
तुमसे अति भय माने

किन्तु; कभी 'मधुरेश' न तुमसे चलता कोई चारा।
मृत्युसुन्दरी! महामहिम है गौरव सदा तुम्हारा।।

वह मानव क्या ?

वह मानव क्या ? जिसके मन में मानवता के प्रति प्यार नहीं।
वह प्यार नहीं, जिसमें होता सच्चाई का आधार नहीं।।

मानवता ही मानवकुल की
जग में, सच्ची पहचान सदा,
सच्चा मानव ही करता है
मानवता का सम्मान सदा,

वह मानव क्या ? जिसका जग में मानवतामय व्यवहार नहीं।
वह मानव क्या ? जिसके मन में मानवता के प्रति प्यार नहीं।।

वह धन्य, जो कि शुभ कर्मों से
जगती को जगमग करता है,
मानवता के पावन पथ पर
जो दीप प्रेम का धरता है,

मानवता के बिन जीवन में सुख का होता संचार नहीं।
वह मानव क्या ? जिसके मन में मानवता के प्रति प्यार नहीं।।

जग में जिस मानव का जीवन
रहता सेवा–सहकार–भरा,
कृतकृत्य वही मानव, जिसके
मन में रहता है प्यार भरा,

जिसमें जड़–चेतन खिल न सके, वह सुखद वसन्त–बहार नहीं।
वह मानव क्या ? जिसके मन में मानवता के प्रति प्यार नहीं।।

जिसमें सच्ची मानवता है,
उसमें रहता अभिमान कहाँ,
मानवता के बिन मानव का
जग में सच्चा उत्थान कहाँ,

'मधुरेश' बिना मानवता के जग में बहती रसधार नहीं।
वह मानव क्या ? जिसके मन में मानवता के प्रति प्यार नहीं।।

मन से ही तो जीवन जगमग

मन से ही होती जीत सदा, मन से ही होती हार सखे!
मन से ही तो जीवन जगमग, अपने मन को मत मार सखे!!

मन ही है अपना शत्रु सदा,
मन जैसा कोई मीत नहीं,
मन ही करता सब खेल सदा,
मन बिन जीवन–संगीत नहीं,

मन से ही जीवन–उपवन में मिल सके वसन्त–बहार सखे!
मन से ही तो जीवन जगमग, अपने मन को मत मार सखे!!

उसका जीना क्या जीना है,
जिसने अपना मन मार दिया,
वह जीत सका सारे जग को,
जिसने मन पर अधिकार किया,

अपने मन को बलवान बना, मन को कर प्यार–दुलार सखे!
मन से ही तो जीवन जगमग, अपने मन को मत मार सखे!!

हैं व्यर्थ सभी धन–बल उसके,
हैं जिसे न मन बलवान मिला,
है धन्य वहीं मानव जग में,
जिसका मन सुमन–समान खिला,

आधार जिसे सुन्दर मन का, उसका सुखमय संसार सखे!
मन से ही तो जीवन जगमग, अपने मन को मत मार सखे!!

जिसके मन का उद्धार हुआ,
वह मनुज दुखों के पार गया,
तर गया स्वयं भवसागर से,
वह अपरों को भी तार गया,

'मधुरेश' मिले परमेश्वर तब, जब मन हो विगत–विकार सखे!
मन से ही तो जीवन जगमग, अपने मन को मत मार सखे!!

करो साधना मन की

साध सको, तो साधो मन को करके शुभ उपचार।
मन को साधे बिना न मिलता आत्मसिद्धि का द्वार।।

मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण नित्य महान,
प्रतिपल चंचल ही रहता मन शाखा–हरिण–समान,
मन को करो नियंत्रित, निज में खींचो मन के तार।
मन को साधे बिना न मिलता आत्मसिद्धि का द्वार।।

मन के हारे हार यहाँ पर मन के जीते जीत,
छोड़ो बैर–बुराई–अवगुण, सुनो आत्मसंगीत,
करो साधना मन की, होगी अनहद की झनकार।
मन को साधे बिना न मिलता आत्मसिद्धि का द्वार।।

माया के मोहक मधुवन में मन–मधुकर गतभान,
जिसने मन को साधा, उसने किया लक्ष्य–संधान,
उसकी सफल साधना, जिसने मन को लिया सुधार।
मन को साधे बिना न मिलता आत्मसिद्धि का द्वार।।

सुख–दुख, हानि–लाभ, यश–अपयश की न जिसे परवाह,
जिसने पकड़ी पुण्य प्रेममय परमेश्वर की राह,
उसका जगमग जीवन जग में रहता सदाबहार।
मन को साधे बिना न मिलता आत्मसिद्धि का द्वार।।

यदि अनुकूल हुआ मन, तो फिर प्रभु होंगे अनुकूल,
सावधान मन के संयम से होंगे शुभ फल–फूल,
मन मारे से नहीं मरेगा, होगा जीवन भार।
मन को साधे बिना न मिलता आत्मसिद्धि का द्वार।।

त्याग असत् को, सत् से बाँधो मन की कोमल डोर,
वही मित्र मन, जो चलता सत्–चित्–आनँद की ओर,
ऊर्ध्वमुखी पंकज के सम कर लो मन का उद्धार।
मन को साधे बिना न मिलता आत्मसिद्धि का द्वार।।

अद्‌भुत गीता-योग

अखिल विश्व में भासमान है अद्‌भुत गीता-योग।
जिसके समाचरण से जन के कट जाते भव-रोग।।

परमेश्वर की श्रीमुखवाणी है गीता का ज्ञान,
मानव-मानवता के हित में नित्य नवल वरदान,
परम ज्ञान-विज्ञान उसी में सहज आत्म-संधान,
नित्य निहित है श्रीगीता में मानवीय उत्थान,

मिलता शुभ परिणाम, करे जो गीतायोग-प्रयोग।
अखिल विश्व में भासमान है अद्‌भुत गीता-योग।।

गीता की महिमा का कोई पा न सका है पार,
सकल वेद-वेदांग-उपनिषद् स्मृतियों का है सार,
गीता-ज्ञान सभी का करता अपगति से उद्धार,
जो करता स्वीकार इसे, वह रहता सदाबहार,

गीतायोग-बिना भटके जन भोग रहे भव-भोग।
अखिल विश्व में भासमान है अद्‌भुत गीता-योग।।

गीतायोग सभी के हित में अमिट-अलौकिक वर्म,
गीतायोग हमें दिखलाता जीवन का शुभ मर्म,
गीतायोग हमें सिखलाता श्रेय-प्रेयमय कर्म,
गीतायोग सत्य-शिव-सुन्दर है मानव का धर्म,

गीतायोग-बिना जीवन के कर्मकाण्ड सब ढोंग,
अखिल विश्व में भासमान है अद्‌भुत गीता-योग।।

गीतायोग सभी के हित में नर हों या कि नरेश,
सदा सर्वतोभद्र ज्ञान है गीता का संदेश,
श्रीगीता के शब्द-शब्द में झलक रहा परमेश,
गीतायोग जिया जिसने, वह धन्य-धन्य 'मधुरेश',

गीतायोग-अमृत को पी कर भव तर जाते लोग।
अखिल विश्व में भासमान है अद्‌भुत गीता-योग।।

नित्य वेद-विज्ञान

अखिल विश्व में भासमान है नित्य वेद–विज्ञान।
परमेश्वर की पावन वाणी, शब्द–शब्द दिनमान।।

ऋक्–यजु–साम–अथर्व नाम से
ख्यापित चारो वेद,
जिनमें अग–जग की समष्टि का
नित्य निहित है भेद,

आदिज्ञान के कोष सनातन मंगल–मूल–निधान।
अखिल विश्व में भासमान है नित्य वेद–विज्ञान।।

तपःपूत ऋषियों ने करके
दर्शन विविध प्रकार,
प्रकृति–पुरुष के मूल मर्म को
स्मृति में लिया उतार,

किया लोकमंगल–हित पावन मंत्रों का उद्गान।
अखिल विश्व में भासमान है नित्य वेद–विज्ञान।।

सभी उपनिषद्–शास्त्र वेद का
करते हैं व्याख्यान,
जिनसे मिलता सुर–नर सबको
सहज आत्म–संधान,

उनको वेद 'लबेद' सूझते, जिन्हें घोर अभिमान।
अखिल विश्व में भासमान है नित्य वेद–विज्ञान।।

लोक–ज्ञान–विज्ञान–कला सब
वेदों में भरपूर,
जो कर देते मानव–मन की
दुःख–दीनता दूर,

है 'मधुरेश' सभी ज्ञानों में वैदिक ज्ञान प्रधान।
अखिल विश्व में भासमान है नित्य वेद–विज्ञान।।

पावन प्यार बिना

जीवन तो है भार जगत में पावन प्यार बिना।
हो न सके झंकार बीन में कोमल तार बिना।।

परम प्रेम ही परमेश्वर की
पावन राह सदा,
पुण्य प्रेम की ही तो सबको
रहती चाह सदा,

नीरस रहती प्रकृति सदैव वसन्त–बहार बिना।
जीवन तो है भार जगत में पावन प्यार बिना।।

कहते हैं रवि–शशि ग्रह–उप–ग्रह,
सब मिल प्यार करो,
कभी–कभी क्या ? प्रतिपल ही तुम
रस–त्योहार करो,

मन हो जाता कुमन लोक में रस–आधार बिना।
जीवन तो है भार जगत में पावन प्यार बिना।।

पुण्य प्रेम की आशा सबके
मन में जाग रहीं,
सागर से मिलने को आतुर
सरिता भाग रही,

जीवन है गतसार प्रेम के मधु उपहार बिना।
जीवन तो है भार जगत में पावन प्यार बिना।।

प्रेम स्वयं परमेश, प्रेम –सा
कोई भोग नहीं,
प्रेमयोग ही योग, प्रेम–सा
कोई योग नहीं,

हो जाता है प्रेम व्यर्थ के भेद–विचार बिना।
जीवन तो है भार जगत में पावन प्यार बिना।।

मानवता का मान

मानवता का मान न करना केवल पागलपन है।
जिस जीवन में ज्योति न जागे, वह भी क्या जीवन है ??

घोर अविद्या–अहंकार का
जहाँ न हो अँधियारा,
सत्य–स्नेह–सद्भाव–न्याय की
जहाँ बहे शुचि धारा,

वह ही मानव–मानवता का मंगलमय नन्दन है।
मानवता का मान न करना केवल पागलपन है।।

जग में मानवता से बढ़कर
धर्म नहीं है कोई,
मानवता के समाचरण–सा
कर्म नहीं है कोई,

मानवता ही तो मानव का सच्चा जीवन–धन है।
मानवता का मान न करना केवल पागलपन है।।

मानवता के शुभ विहान में
जो न कभी भी जागा,
उससे बढ़कर नहीं कहीं भी
कोई अधम – अभागा,

मानवता ही परमेश्वर का उज्ज्वल आराधन है।
मानवता का मान न करना केवल पागलपन है।।

मानवता से ही तो मानव
आत्म–तत्त्व को पाता,
धन्य वही, जो मानवता का
सुपथ सदा अपनाता,

मानवता, 'मधुरेश' सभी के सुख का धरा–गगन है।
मानवता का मान न करना केवल पागलपन है।।

मन मधुमास हुआ

नव यौवन के मधु उपवन में मन मधुमास हुआ।

मदिराये अनगिन भावों के
महुआ महक उठे,
नई उमंगों के विहंग–कुल
चह–चह चहक उठे,

मिलन–पर्व के मंत्र महत्तम पढ़ता प्रेम–सुआ।

रोम–रोम हो उठा उल्लसित
मृदु उर – तार बजे,
अभिलाषाओं के आँगन में
स्नेहिल साज सजे,

अहा! अनछुए अन्तस्तल को किसने आज छुआ?

मेरी साँसों के स–र ग–म में
मलय बयार बही,
संयम की प्राचीर यकायक
अपने आप ढही,

नयन निमीलित हुए, हृदय में अमृत–बूँद चुआ।

जग में जगमग जीवन जीना
कोई खेल नहीं,
लोक–वासना का जिसमें हो
कुछ भी मेल नहीं,

दे 'मधुरेश' हमें परमेश्वर ऐसी अमर दुआ।

कोई नहीं रहा इस जग में

कभी एक दिन स्वर्णभवन भी अपने आप ढहेगा।
कोई नहीं रहा इस जग में कोई नहीं रहेगा।।

कोई कितना धनी–बली हो,
राजा हो या रानी,
यहाँ न रहने पाता कोई,
सबकी एक कहानी,

परिवर्तन का चिर प्रवाह यों ही अविराम बहेगा।
कोई नहीं रहा इस जग में कोई नहीं रहेगा।।

मानव–तन का सत्य सनातन
कभी न जिसने जाना,
नित्य सत्य परमात्म–तत्त्व को
नहीं कभी पहचाना।

जन्म–मरण के कष्ट क्यों न वह बारंबार सहेगा।
कोई नहीं रहा इस जग में कोई नहीं रहेगा।।

तरु के पत्र स्वयं झर जाते,
खिले फूल मुरझाते,
एक अवधि के बाद जीव सब
क्रमशः मरते जाते,

जन्म–मरण की चिर गाथा को युग–युग स्वयं कहेगा।
कोई नहीं रहा इस जग में कोई नहीं रहेगा।।

क्यों करते अभिमान यहाँ पर
किसी भाँति का भाई,
जीवन व्यर्थ हो गया उसका,
जिसकी पाप कमाई,

धन्य वही 'मधुरेश' मनुज, जो प्रभु की राह गहेगा।
कोई नहीं रहा इस जग में कोई नहीं रहेगा।।

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

ठहरो, तनिक विचारो मन!

इधर–उधर तुम भटक रहे क्यों ? ठहरो, तनिक विचारो मन!
चले कहाँ को, कहाँ आ गये ? लक्ष्य न कभी विसारो मन!!

समय स्वयं सब देख रहा है,
जहाँ कहीं तुम जाते–आते,
माया–नटिनी के आँचल में
सोचो, क्या सच्चा रस पाते,

अपनी आत्मा के दर्पण में अपने कर्म निहारो मन!
इधर–उधर तुम भटक रहे क्यों! ठहरो, तनिक विचारो मन!!

लोभ–मोह–मद–काम रातदिन
तुमको तो रहते हैं घेरे,
उनके जटिल जाल में पड़ कर
तुम निज से रहते मुँह फेरे,

जो बीता, सो बीता, अब तो जागो, कर्म सँवारो मन!
इधर–उधर तुम भटक रहे क्यों ? ठहरो, तनिक विचारो मन!!

माना, जीवन में विपदायें
रोक रही हैं राह तुम्हारी,
लोक–वासना चला रही है
नित्य–निरन्तर तुम पर आरी,

जागो, उठो, बढ़ो तुम आगे, हिम्मत कभी न हारो मन!
इधर–उधर तुम भटक रहे क्यों? ठहरो, तनिक विचारो मन!!

जायेगा कुछ नहीं साथ में,
खाली हाथ तुम्हारे होंगे,
अंत समय में कर्म शुभाशुभ
केवल, साथ तुम्हारे होंगे,

छोड़ असत् को, सत् को ही 'मधुरेश' सदा तुम धारो मन!
इधर–उधर तुम भटक रहे क्यों ? ठहरो, तनिक विचारो मन!!

प्रेम सदा सुखसार

प्रेम स्वयं परमेश, प्रेम ही सदा सर्व–सुखसार।
प्रेम–बिना तो जीवन जग में लगता केवल भार।।

सभी रसों में पुण्य प्रेम ही
रस है सदा विशेष,
जिसमें राग न रहे किसी से
मन में रहे न द्वेष,

सबके लिये न कभी बन्द हो सहज प्रेम के द्वार।
प्रेम स्वयं परमेश, प्रेम ही सदा सर्व–सुखसार।।

प्रेमदेव का पूजन ही है
जग में मंगल–मूल,
पुण्य प्रेम से ही खिलते हैं
मानवता के फूल,

जग–जीवन के मन–उपवन में प्रेम वसन्त–बहार।
प्रेम स्वयं परमेश, प्रेम ही सदा सर्व–सुखसार।।

अखिल लोक में पुण्य प्रेम ही
सबको अमृत – समान,
प्रेम नित्य उपमेय स्वयं का,
प्रेम स्वयं उपमान,

सदा प्रेम से ही बजते हैं उर के कोमल तार।
प्रेम स्वयं परमेश, प्रेम ही सदा सर्व–सुखसार।।

जड़ भी चेतन बन जाता है
पाकर प्रेम – प्रकाश,
पुण्य प्रेम से भरे हुए हैं
धरती औ' आकाश,

बन सकता 'मधुरेश' प्रेम से विश्व एक परिवार।
प्रेम स्वयं परमेश, प्रेम ही सदा सर्व–सुखसार।।

सँभल-सँभल चल

इस मायामय भवकानन में ओ मेरे मन! सँभल–सँभल चल।
श्वास–श्वास में ही यह दुर्लभ जीवन बीत रहा है पल–पल।।

परमेश्वर की अनुकम्पा का
दुर्लभ फल है यह मानव–तन,
मानवता से बढ़ कर कोई
और नहीं है सुख–संपति–धन,

मानवता में नित्य निहित है मानव–जीवन का उत्तम फल।
इस मायामय भवकानन में ओ मेरे मन! सँभल–सँभल चल।।

काम–क्रोध–मद–मोह–लोभ से
भरा हुआ है यह भव–सागर,
जो इनसे बच सके कमलवत्,
वह ही है सच्चा मति–नागर,

विषय–वासना की वैताली तुझसे करती रहती है छल।
इस मायामय भवकानन में ओ मेरे मन! सँभल–सँभल चल।।

तू अन्तस् में देख सजग हो
आत्म–रूप है अति मनभावन,
जिसका दर्शन कर देता है
जग में पावन को भी पावन,

आगे बढ़कर आत्मशक्ति से तू मायावी–दल को दे दल।
इस मायामय भवकानन में ओ मेरे मन! सँभल–सँभल चल।।

मरु–मरीचिका से न कभी भी
हो सकता है तेरा तर्पण,
एक नित्य सच्चिदानन्द को
कर तू अपना सर्व–समर्पण,

पावन पुण्य प्रेम के जल से कर 'मधुरेश' स्वयं को निर्मल।
इस मायामय भवकानन में ओ मेरे मन! सँभल–सँभल चल।।

बौराया मन

नव यौवन के नव वसन्त में बहुत–बहुत बौराया मन।
कली–कली पर, फूल–फूल पर मधुकर–सा मँड़राया मन।।

मोहक सपनों के उपवन में
उड़ा रातदिन पंख पसारे,
दिन में भी यह रहा देखता
आसमान के चाँद–सितारे,

रस के लिये महातुर होकर सदा रहा ललचाया मन।
नव यौवन के नव वसन्त में बहुत–बहुत बौराया मन।।

लाख इसे कोई समझाये
किन्तु; किसी की बात न माने,
अपनी ही धुन में दीवाना
छेड़े नित नव राग–तराने,

माया के सम्मोहन में पड़ दिशा–दिशा में धाया मन।
नव यौवन के नव वसन्त में बहुत–बहुत बौराया मन।।

उस मन को सोया ही जानो,
जो जीवन में कभी न जागा,
भागा जो न प्रेम के पीछे
उससे बढ़कर कौन? अभागा,

सब कोशिश बेकार हो गयी, नहीं पकड़ में आया मन।
नव यौवन के नव वसन्त में बहुत–बहुत बौराया मन।।

मन मारे जो जिया लोक में,
ऐसा जीना भी क्या जीना,
जिससे नहीं प्यास बुझ पाये,
ऐसा पीना भी क्या पीना,

ऐसा कौन ? लोक में जिसका कभी नहीं अँगड़ाया मन।
नव यौवन के नव वसन्त में बहुत–बहुत बौराया मन।।

माया की मोह नगरी में

कोकिल की काकली कहाँ अब ? कर्कश स्वर हैं काग के।
द्वन्द्व–द्वेष बढ़ रहा लोक में दिन बीते अनुराग के।।

सबके मन से कहीं किसी का
नहीं दीखता मेल है,
अर्थ–काम की घोर दासता,
सब माया का खेल है,

धक्कामार गीत अब होते, बीत गये दिन फाग के।
कोकिल की काकली कहाँ अब? कर्कश स्वर हैं काग के।।

कैसे कहूँ नगर की बातें,
दिल टूटा अब गाँव का,
कटते जाते पेड़ रातदिन,
नहीं ठिकाना छाँव का,

आकर्षण मिट रहे सभी अब अमराई, वन–बाग के।
कोकिल की काकली कहाँ अब? कर्कश स्वर हैं काग के।।

आपाधापी, मारामारी
मची हुई हर ओर है,
प्रेम हो गया मरुजल–जैसा,
स्वार्थ–घटा घनघोर है,

सधवायें विधवा–सी लगतीं, मिटते चिह्न सुहाग के।
कोकिल की काकली कहाँ अब? कर्कश स्वर हैं काग के।।

अहंकार के घटाटोप में
भाव–चाव सब खो रहा,
जिसको देखो, वही अहं में
पागल–जैसा हो रहा,

माया की मोहक नगरी में कौन बचा बिन दाग के ?
कोकिल की काकली कहाँ अब? कर्कश स्वर हैं काग के।।

प्यार स्वयं परमेश

जिसमें हो छल–स्वार्थ परस्पर, वह तो पावन प्यार नहीं।
पुण्य प्यार से बढ़कर कोई जीने का आधार नहीं।।

जहाँ प्रेम की यमुना–गंगा,
वहाँ सुमति का है संगम,
जिसमें करके नेह–निमज्जन
पुलकित होते जड़–जंगम,

प्यार स्वयं परमेश, प्यार–सा कोई भी उपचार नहीं।
पुण्य प्यार से बढ़कर कोई जीने का आधार नहीं।।

पुण्य प्यार से ही होता है
मन का मन से मेल सदा,
पुण्य प्यार ही परहित जलता
ज्यों दीपक में तेल सदा,

पुण्य प्यार के बिना लोक में आती सुखद बहार नहीं।
पुण्य प्यार से बढ़कर कोई जीने का आधार नहीं।।

पुण्य प्यार सबके जीवन में
देता है रस घोल सदा,
पुण्य प्यार का मोल प्यार है,
प्यार स्वयं अनमोल सदा,

जहाँ प्यार के फूल, वहाँ पर जीवन लगता भार नहीं।
पुण्य प्यार से बढ़कर कोई जीने का आधार नहीं।।

प्रेमदेव के आराधन में
किसी भाँति का भेद कहाँ,
पुण्य प्यार है जहाँ, वहाँ पर
रहता कोई खेद कहाँ,

प्यार–बिना 'मधुरेश' किसी का हुआ कभी उद्धार नहीं।
पुण्य प्यार से बढ़कर कोई जीने का आधार नहीं।।

प्रिय की पूजा में निशिदिन

मन को कमजोर करो मत, तन भले जरठ हो जाये।
प्रिय की पूजा में निशिदिन रहना मन–ज्योति जगाये।।

मन का ही जीव–जगत से
है जन्म–जन्म का नाता,
छूटे तन, फिर भी मन तो
है संग जीव के जाता,

अनुकूल बली मन ही तो आशा के सुमन खिलाये।
प्रिय की पूजा में निशिदिन रहना मन–ज्योति जगाये।।

संकल्प सत्य–शिव–सुन्दर,
मन की करता रखवाली,
मन ही जीवन–उपवन का
बनता है मोहक माली,

मन की अतुलित महिमा का कोई भी पार न पाये।
प्रिय की पूजा में निशिदिन रहना मन–ज्योति जगाये।।

उद्दीप्त बली मन से ही
मानव ने गगन छुआ है,
सब भाँति बली मन से ही
निर्धन भी सधन हुआ है,

मन–हीन जनों का जीवन दिन को भी रात बनाये।
प्रिय की पूजा में निशिदिन रहना मन–ज्योति जगाये।।

मन ही मर जाये, तो फिर
जग में जीना, क्या जीना,
मन हार गया यदि, तब तो
अमरित पीना, क्या पीना,

'मधुरेश' मार कर मन को जीवन में स्वाद न आये।
प्रिय की पूजा में निशिदिन रहना मन–ज्योति जगाये।।

मरने से क्या डरना ?

आया है जो आज जगत में, उसे कभी तो जाना होगा।
आज जिसे तुम नया कह रहे, वह कल स्वयं पुराना होगा।।

मरने का दिन एक अटल है,
तो फिर मरने से क्या डरना,
चार दिनों के चल जीवन में
कोई अहंकार क्या करना,

महाकाल के सम्मुख सक्षम कोई नहीं बहाना होगा।
आया है जो आज जगत में, उसे कभी तो जाना होगा।।

परिवर्तन ही विश्व–नियति है,
परिवर्तन की नित्य कहानी,
हिम से जल, जल भाप बने फिर
भाप पिघल कर बनता पानी,

आत्मा के अमरत्व–तत्त्व को हमें स्वयं ही पाना होगा।
आया है जो आज जगत में, उसे कभी तो जाना होगा।।

जिसका होता जन्म यहाँ पर
मरण उसी का होता आया,
पायेगा फल जीव उसी के,
बीज स्वयं जो बोता आया,

इस दुनिया में नहीं किसी का सब दिन अटल ठिकाना होगा।
आया है जो आज जगत में, उसे कभी तो जाना होगा।।

हो जाते हैं अमर लोक में
परहित में ही जीने वाले,
बन जाते शिव स्वयं लोकहित
कालकूट भी पीने वाले,

मन को तो 'मधुरेश' कमल–सम जग–जल–बीच खिलाना होगा।
आया है जो आज जगत में, उसे कभी तो जाना होगा।।

चलते रहो, चलते रहो

जागो, उठो, सत्पंथ पर चलते रहो, चलते रहो।
जग–बीच जगमग दीप–सम जलते रहो, जलते रहो।।

इस देव–दुर्लभ देह का
शुभ लक्ष्य देखो सामने,
जैसा किया शुभ आचरण
श्रीराम ने, घनश्याम ने,

सद्भावना के बिम्ब में ढलते रहो, ढलते रहो।
जागो, उठो, सत्पंथ पर चलते रहो, चलते रहो।।

आयें भले ही विघ्न अनगिन,
तुम न हिम्मत हारना,
शिव–सत्य–सुन्दर साधना–
को ही सदा स्वीकारना,

हिम–सम सदा परमार्थ में गलते रहो, गलते रहो।
जागो, उठो, सत्पंथ पर चलते रहो, चलते रहो।।

गतिहीन होना है मरण,
गति चेतना का सार है,
गति नित्य जीवन–जागरण का,
सृष्टि का आधार है,

संचेतना की गोद में पलते रहो, पलते रहो।
जागो, उठो, सत्पंथ पर चलते रहो, चलते रहो।।

चलता हुआ ही पा सका है
अमृत को, आनन्द को,
मिलती कहाँ–कब मंजिलें
मतिमन्द को, गतिमन्द को,

'मधुरेश' दुख को, द्वन्द्व को दलते रहो, दलते रहो।
जागो, उठो, सत्पंथ पर चलते रहो, चलते रहो।।

प्यार-बिना पागल हो जाते

पुण्य प्यार तुम करो सभी से, फूल खिलाओ प्यार के।
प्यार–बिना पागल हो जाते लोग सभी संसार के।।

पुण्य प्यार है जहाँ, वहीं तो
सच्चा देव – स्थान है,
पुण्य प्यार के बिना स्वर्ग भी
मानो महा मशान है,

प्यार–बिना तो नहीं कभी भी आते दिवस बहार के।
पुण्य प्यार तुम करो सभी से, फूल खिलाओ प्यार के।।

है उपमान न कोई जग में
सच्चे पावन प्यार का,
प्यार स्वयं कारण बन जाता
ईश्वर के अवतार का,

सज जाते हैं साज प्यार से जीवन में श्रृंगार के।
पुण्य प्यार तुम करो सभी से, फूल खिलाओ प्यार के।।

आकर्षण की परम शक्ति है
सच्चे पावन प्यार में,
प्यार–बिना सुख कहीं नहीं है
अग–जग के अधिकार में,

प्यार–बिना रूखे रहते हैं रूप सभी उपहार के।
पुण्य प्यार तुम करो सभी से, फूल खिलाओ प्यार के।।

बहु उपचार भले हों, फिर भी
प्यार परम उपचार है,
प्यार–बिना जग–जीवन सारा
लगता केवल भार है,

पुण्य प्यार से ही खुलते हैं द्वार आत्म–उद्धार के।
पुण्य प्यार तुम करो सभी से, फूल खिलाओ प्यार के।।

नहीं प्यार-सा अमृत कहीं भी

प्यार–बिना ओ प्यारे भाई! क्या रक्खा संसार में ?
जीवन का है सार सदा ही केवल सच्चे प्यार में।।

प्यार सत्य–शिव–सुन्दरता का
चिर मंगलमय मूल है,
प्यार–बिना विज्ञान–ज्ञान की
सारी उन्नति धूल है,

हिम गलकर बन प्यार उमड़ता नदियों की जलधार में।
प्यार–बिना ओ प्यारे भाई! क्या रक्खा संसार में ??

प्यार–बिना संभव न कभी भी
सहज मनों का मेल है,
प्यार सदा सबको सुख देता
ज्यो दीपक में तेल है,

प्यार–बिना है स्वाद न कुछ भी अग–जग के अधिकार में।
प्यार–बिना ओ प्यारे भाई! क्या रक्खा संसार में ??

ऐसा कौन? नहीं जो जग में
कभी प्यार को चाहता,
प्यार सदा ही अन्तस्तल की
गहराई को थाहता,

प्यार–बिना जीवन की नौका फँस जाती मझधार में।
प्यार–बिना ओ प्यारे भाई! क्या रक्खा संसार में ??

नहीं प्यार–सा अमृत कहीं भी,
प्यार स्वयं परमेश है,
पुण्य प्यार की महिमा जग में
देख रहा 'मधुरेश' है,

प्यार परम आधार सभी के भव–निधि से उद्धार में।
प्यार–बिना ओ प्यारे भाई! क्या रक्खा संसार में ??

तुम मेरे नाथ! तुम्हारा मैं

शरणागत हूँ श्रीचरणों में, हे नाथ! प्रणति स्वीकार करो।
अभिलाषा कोई और नहीं, बस, प्यार करो तुम प्यार करो।।

इस भव की भूल–भुलैया में
थक कर मेरा मन चूर हुआ,
माया की मोहक काया में
फँस करके तुमसे दूर हुआ,

अब तो करुणाकर! करुणा कर भवसागर से तुम पार करो।
शरणागत हूँ श्रीचरणों में, हे नाथ! प्रणति स्वीकार करो।।

मैंने देखा सारे जग में
प्रभु! तुम–सा वत्सल और नही,
सबके प्रति पावन प्रेम–भरा
तुम–सा सुखदायक ठौर नहीं,

डगमगा रही जीवन–नौका, हे परमेश्वर! भव–भार हरो।
शरणागत हूँ श्रीचरणों में, हे नाथ! प्रणति स्वीकार करो।।

अपनाओगे अब तुम मुझको,
यों मेरा मानस बोल रहा,
साँसों में श्रद्धा का सौरभ
विश्वास निरन्तर घोल रहा,

तुम मेरे, नाथ! तुम्हारा मैं, ऐसा कह अंगीकार करो।
शरणागत हूँ श्रीचरणों में, हे नाथ! प्रणति स्वीकार करो।।

तुमने अगनित जग–जीवों पर
जाने कितना उपकार किया,
फल देकर अपनी करुणा का
जड़मय जीवन से तार दिया,

'मधुरेश' पड़ा भव–बन्धन में, हे नाथ! उठो–उद्धार करो।
शरणागत हूँ श्रीचरणों में, हे नाथ! प्रणति स्वीकार करो।।

चलता-चल मन!

पुण्य प्रेम के पावन पथ पर चलता-चल मन! चलता-चल।
पुण्य प्रेम से ही मिलते हैं मानव-जीवन के शुभ फल।।

नर हो या कि नरेश, सभी को
पुण्य प्रेम की चाह सदा,
सारे जग में पुण्य प्रेम ही
परमेश्वर की राह सदा,

जग-जीवन में पुण्य प्रेममय दीपक बन कर जलता चल।
पुण्य प्रेम के पावन पथ पर चलता-चल मन! चलता-चल।।

पुण्य प्रेम ही मानवता का
वन्दन है, अभिनन्दन है,
सदा-सत्य-शिव-सुन्दरता का,
पुण्य प्रेम ही नन्दन है,

पुण्य प्रेम के शुभ विहान का बन कर सूर्य निकलता चल।
पुण्य प्रेम के पावन पथ पर चलता-चल मन! चलता-चल।।

स्वयं प्रकृति भी पुण्य प्रेम के
द्वार लोकहित खोल रही,
कण-कण को उल्लास लुटाती
जग-जीवन-रस घोल रही,

खल बन कर तू खल न किसी को नहीं कभी भी छलता चल।
पुण्य प्रेम के पावन पथ पर चलता-चल मन! चलता-चल।।

पुण्य प्रेम के ही प्रभात में
मानव-मन का फूल खिला,
पुण्य प्रेम की नौका से ही
भव-सागर का कूल मिला,

पुण्य प्रेम के सागर में ही अमल कमल-सम पलता चल।
पुण्य प्रेम के पावन पथ पर चलता-चल मन! चलता-चल।।

धन्य उसी का जीवन

धन्य उसी का जीवन, जिसने हरिगुण–गान–किया।
परमेश्वर का परम प्रेममय अमृत पान किया।।

जन्मा जो भी जीव जगत में
रहता नहीं सदा,
तन–यौवन के सुख का झरना
बहता नहीं सदा,

वही कृतार्थ हुआ, जिसने निज को पहचान लिया।
धन्य उसी का जीवन, जिसने हरिगुण–गान–किया।।

ऐसा कौन? जिसे इस जग में
सब सुख सदा मिले,
ऐसी कौन? लता–तरु जिस पर
सुमन सदैव खिले,

वही अभागा, जिसने धन–बल पर अभिमान किया।
धन्य उसी का जीवन, जिसने हरिगुण–गान–किया।।

वीणा में झंकार न होती
कोमल तार–बिना,
सरस नहीं होता जग–जीवन
सच्चे प्यार–बिना,

वह प्रणम्य, जिसने अग–जग को प्रेम प्रदान किया।
धन्य उसी का जीवन, जिसने हरिगुण–गान–किया।।

हरि–हरिजन से हो न सके जो,
वह शुभ नेह नहीं,
पर–उपकार न सेवा जिससे,
वह शुभ देह नहीं,

धन्य वही, 'मधुरेश' दुखी को जिसने दान दिया।
धन्य उसी का जीवन, जिसने हरिगुण–गान–किया।।

ओ मेरे भगवान!

छल–छल छलके नेह नयन में, अधरों पर मुसकान।
मोह लिया मेरा मन तुमने ओ मेरे भगवान!!

अहा, तुम्हारी रूप–राशि–घन
सघन छटा – छबि – छोर,
दर्शन पाकर मगन हो रहा,
नाच उठा मन – मोर,

क्या कहना है, प्रभो ! तुम्हीं हो सुख–सौन्दर्य–निधान।
मोह लिया मेरा मन तुमने ओ मेरे भगवान!!

जाने कब से भटक रहा था
माया – वन के बीच,
हाथ पकड़ कर तुमने मुझको
लिया पास में खींच,

कैसे करूँ बखान, नयन–मन करते हैं रसपान।
मोह लिया मेरा मन तुमने ओ मेरे भगवान!!

तुम ही हो करुणावरुणालय,
तुम्हीं कृपा के कोष,
बिना तुम्हारी अनुकम्पा के
हुआ किसे–कब? तोष,

बिना तुम्हारे कभी न होता भव–भय का अवसान।
मोह लिया मेरा मन तुमने ओ मेरे भगवान!!

प्रभो! तुम्हीं से हाथ जोड़कर
बिनती है भरपूर,
श्रीचरणों की छाया से अब
मुझे न करना दूर,

हो 'मधुरेश' तुम्हीं मेरे सब तन–मन–जीवन–प्रान।
मोह लिया मेरा मन तुमने ओ मेरे भगवान!!

करो प्रेम का दान

जब–तक जीवन, पियो प्रेम–रस, करो प्रेम का दान।
प्रेम–बिना तो यह सारा जग भीषण प्रेत–समान।।

प्रेम परम उपचार लोक में,
प्रेम स्वयं परमेश,
सदा प्रेम–रस सभी चाहते
नर हों या कि नरेश,

पुण्य प्रेम ही परमेश्वर का सर्वोत्तम वरदान।
जब–तक जीवन, पियो प्रेम–रस, करो प्रेम का दान।।

पुण्य प्रेम के चिर उपवन में
खिलते सुख के फूल,
पुण्य प्रेम पाकर जग के जन
सब दुख जाते भूल,

ला देता है प्रेम मृतक के अधरों पर मुसकान।
जब–तक जीवन, पियो प्रेम–रस, करो प्रेम का दान।।

भला कौन ऐसा ? जो जग में
नहीं चाहता प्रेम,
प्रेम–बिना नीरस लगते हैं
सभी योग औ' क्षेम,

सब भोगों में प्रेमभोग ही सबसे प्रबल प्रधान।
जब–तक जीवन, पियो प्रेम–रस, करो प्रेम का दान।।

परम प्रेम में परमेश्वर की
रहती सहज सुगन्ध,
प्रेम नहीं, तो अग–जग के सब
प्राण – हीन सम्बन्ध,

करता है 'मधुरेश' प्रेम ही मानव का उत्थान।
जब–तक जीवन, पियो प्रेम–रस, करो प्रेम का दान।।

दीवानापन

मंजिल तक पहुँचा देता है मानव को दीवानापन।
दीवानों की बात निराली, दीवानी मस्तानापन।।

पार नहीं पा सकता कोई
दीवानों की मस्ती का,
हाल भला क्या जाने कोई
दीवानों की बस्ती का,

दीवानों से कभी किसी का चलता नहीं सयानापन।
मंजिल तक पहुँचा देता है मानव को दीवानापन।।

जीवन में जिस पथ पर भी पद
दीवाने धर देते हैं,
सहज लक्ष्य की प्राण–प्रतिष्ठा
दीवाने कर देते हैं,

दीवानापन को मत कहना भूल कभी बचकानापन।
मंजिल तक पहुँचा देता है मानव को दीवानापन।।

दीवानापन महा मंत्र है
परम लक्ष्य को पाने का,
दीवानापन पावन पथ है
परमेश्वर तक जाने का,

नित्य नवल दीवानापन में आता नहीं पुरानापन।
मंजिल तक पहुँचा देता है मानव को दीवानापन।।

बड़े भाग्य से ही कोई जन
दीवाना बन पाता है,
दीवानापन से ही मानव
महा महिम बन जाता है,

किन्तु; नहीं है दीवानापन मूर्खों का मनमानापन।
मंजिल तक पहुँचा देता है मानव को दीवानापन।।

प्यार के फूल

उर–उपवन में खिल–खिल उठते फूल तुम्हारे प्यार के।
आये दिवस बहार के।।

नयनों में उल्लास भरा है,
अन्तस् में विश्वास खरा है,

अथक प्रतीक्षा करते–करते आये दिन अभिसार के।
उर–उपवन में खिल–खिल उठते फूल तुम्हारे प्यार के।
आये दिवस बहार के।।

बाधा–बन्धन टूट रहे हैं,
रस के निर्झर फूट रहे हैं,

मुझको तो पागल कहते हैं लोग सभी संसार के।
उर–उपवन में खिल–खिल उठते फूल तुम्हारे प्यार के।
आये दिवस बहार के।।

विरह–सिन्धु का मिला किनारा,
पल–पल झलके रूप तुम्हारा,

बजती है दिनरात अहा! अब उरवीणा बिन तार के।
उर–उपवन में खिल–खिल उठते फूल तुम्हारे प्यार के।
आये दिवस बहार के।।

महँके मन का कोना–कोना,
रातें चाँदी, दिन ज्यों सोना,

मस्त मदिर मधुमास मिला है, दिन बीते पतझार के।
उर–उपवन में खिल–खिल उठते फूल तुम्हारे प्यार के।
आये दिवस बहार के।।

परमेश्वर का प्यार

सबका सबसे प्यार न होता इस नश्वर संसार में।
पड़े रहो अलमस्त रातदिन परमेश्वर के प्यार में।।

परमेश्वर ही जड़–चेतन का
एकमेव आधार है,
वही सभी को प्रेम–सुधा का
उर्मिल पारावार है,

पड़े हुए तुम क्यों जड़ता के बोझिल व्यर्थ विचार में ?
पड़े रहो अलमस्त रातदिन परमेश्वर के प्यार में।।

प्यार–बिना सुख–सारहीन है
धन – वैभव संसार का,
परम धन्य वह जीवन, जिसको
संबल मिलता प्यार का,

मिलता सदाबहार प्यार परमेश्वर के दरबार में।
पड़े रहो अलमस्त रातदिन परमेश्वर के प्यार में।।

परमेश्वर का प्यार सभी की
साँस–साँस में डोलता,
सदा सत्य–शिव–सुन्दर रस के
द्वार वही है खोलता,

भूले–भटके क्यों फिरते तुम माया के बाजार में ?
पड़े रहो अलमस्त रातदिन परमेश्वर के प्यार में।।

कोई नहीं अन्त महिमा का
उस प्रेमी परमेश की,
वह ही जीवन–गति–मति–रति है
निष्किंचन 'मधुरेश' की,

है सत्–चित्–आनन्द सदा परमेश्वर–पारावार में।
पड़े रहो अलमस्त रातदिन परमेश्वर के प्यार में।।

सुधि ले लो राम!

भटक रहा मैं भवसागर में, अब मेरी सुधि ले लो राम!
माया में मुझको भरमाया, अब यह खेल न खेलो राम!!

बड़ी प्रबल माया है, सबके
मन को रखती अपने पास,
मायापति का नित्य दास मन
बन जाता माया का दास,

माया के इस घोर भँवर में फिर–फिर नही ढकेलो राम!
भटक रहा मैं भवसागर में, अब मेरी सुधि ले लो राम!!

तुम ही माता, पिता तुम्हीं हो,
स्वामी–सखा तुम्हीं भरपूर,
तुम प्रेमी, प्रियतम भी तुम हो,
मुझे रखो माया से दूर,

माया के अति जटिल जाल में मुझको और न ठेलो राम!
भटक रहा मैं भवसागर में, अब मेरी सुधि ले लो राम!!

नहीं कामना धन–वैभव की,
नहीं चाहता मैं यश–मान,
मुझको तो है इष्ट तुम्हारा
नाथ! सदैव प्रेम–रसपान,

मुझको बहुत झेलाया जग में, अब तुम मुझको झेलो राम!
भटक रहा मैं भवसागर में, अब मेरी सुधि ले लो राम!!

तुम हो दूर, पास भी तुम हो,
तुम मैं, मैं तुम, मेरे नाथ,
हे करुणामय! करुणा करके
मेरे शिर पर फेरो हाथ,

मैं तो हूँ 'मधुरेश' तुम्हारा, मुझे शरण में ले लो राम!
भटक रहा मैं भवसागर में, अब मेरी सुधि ले लो राम!!

तुम्हारे-बिन कहाँ रस है?

तुम्हीं मेरे परम प्रिय हो, यही विश्वास रहने दो।
निवेदन है यही तुमसे कि अपने पास रहने दो।।

तुम्हारे बिन कहीं भी मन
नहीं लगता जमाने में,
तुम्हारे बिन कहाँ रस है
कहीं भी मन रमाने में,

हृदय में प्रेम की धारा सदा निर्बाध बहने दो।
निवेदन है यही तुमसे कि अपने पास रहने दो।।

सभी सुख–साज इस जग के
तुम्हारे प्रेम की छाया,
तुम्हारा प्रेम जो पाया
न उसको कुछ कहीं भाया,

सहा अब–तक बहुत मैंने, न अब त्रयताप सहने दो।
निवेदन है यही तुमसे कि अपने पास रहने दो।।

तुम्हारे प्रेम का वैभव
सभी से अति अनूठा है,
तुम्हारे प्रेम के आगे
सभी का प्रेम झूठा है,

हिमालय मोहमाया के प्रभो! चुपचाप ढहने दो।
निवेदन है यही तुमसे कि अपने पास रहने दो।।

न ज्ञानी हूँ न ध्यानी हूँ,
न मैं कोई पुजारी हूँ,
तुम्हारे प्रेम का केवल
सदा ही मैं भिखारी हूँ,

न रोको, अब मुझे 'मधुरेश' मन की बात कहने दो।
निवेदन है यही तुमसे कि अपने पास रहने दो।।

मैं तो रमता राम

मैं तो रमता राम, राम ही मेरे हैं सुखधाम रे!
मुझे राम से काम, राम हैं अखिल लोक–विश्राम रे !!

सभी राम में रमे हुए हैं,
सब में रमते राम,
शरणागत–जन की रक्षा में
कभी न थमते राम,

राम लोक–अभिराम, राम ही अखिल ज्ञान–गुण–ग्राम रे!
मैं तो रमता राम, राम ही मेरे हैं सुखधाम रे!!

मानवता के मानदण्ड हैं,
औ' अनाथ के नाथ,
नहीं कभी अपने सेवक का
राम छोड़ते साथ,

सेवक–वत्सल राम, राम की लीला लोक–ललाम रे!
मैं तो रमता राम, राम ही मेरे हैं सुखधाम रे!!

योगी–यती–मुनीन्द्र सदा ही
जिनका करते ध्यान,,
पावन वेद–पुराण–सुजन सब
करते सुयश बखान,

नहीं राम–सा नाम, राम सब पूरे करते काम रे!
मैं तो रमता राम, राम ही मेरे हैं सुखधाम रे!!

शीश नवाते सभी राम को
विधि – शिव –शेष –सुरेश,
जो भी भक्त राम का जग में,
धन्य वही 'मधुरेश',

भज मन! आठोयाम, राम के बिना नहीं आराम रे!
मैं तो रमता राम, राम ही मेरे हैं सुखधाम रे!!

झूठा सब व्यवहार

सच्चा प्यार नहीं है यदि, तो झूठा सब व्यवहार तुम्हारा।
परमेश्वर को कैसे होगा मिथ्यापन स्वीकार तुम्हारा।।

माया–वन में भटक रहे हो,
करते काम सदा मनमाना,
माना नहीं किसी का कहना,
नहीं स्वयं को तुमने जाना,

जीवन कैसे बन सकता है, बोलो, सदाबहार तुम्हारा ?
सच्चा प्यार नहीं है यदि, तो झूठा सब व्यवहार तुम्हारा।।

साथ तुम्हारा सदा न देंगे
तन–यौवन जन–वैभव सारे,
सोचो, अंत समय इस जग का
कौन चलेगा साथ तुम्हारे,

पार करोगे कैसे तब तुम भवसागर की भीषण धारा ?
सच्चा प्यार नहीं है यदि, तो झूठा सब व्यवहार तुम्हारा।।

चाहे ज्ञानी हो या ध्यानी,
या कितना ही अति अभिमानी,
जीत न कोई सका काल से,
जग में सबकी एक कहानी,

जीव अकेला ही इस जग से जाता है बनकर बेचारा।
सच्चा प्यार नहीं है यदि, तो झूठा सब व्यवहार तुम्हारा।।

सत्य–न्याय के शुभ विहान में
जिसका जीवन कभी न जागा,
अभिमानी बन जिया जगत में,
उससे बढ़कर कौन ?अभागा,

भला नहीं 'मधुरेश' कभी वह, जो न दुखी का बना सहारा।
सच्चा प्यार नहीं है यदि, तो झूठा सब व्यवहार तुम्हारा।।

ओ मेरे मनभावन !

ओ मेरे मनभावन! तुम–बिन जीवन में है घोर उदासी।
एक तुम्हारे बिना लोक के राजभोग भी लगते बासी।।

आता है मधुमास भले ही,
मलयानिल लगती असिधारा,
देखो जहाँ, वहीं दिन में भी
लगता है भीषण अँधियारा,

मन भागा–भागा फिरता है बन करके बेढब सन्यासी।
ओ मेरे मनभावन! तुम–बिन जीवन में है घोर उदासी।।

इस जग में जाने क्या–क्या है,
किन्तु; मुझे सब लगता सपना,
अपनापन है जिसके मन में,
वह ही तो होता है अपना,

प्रतिपल मुझे यही लगता है, मानो मैं हूँ निरा प्रवासी।
ओ मेरे मनभावन! तुम–बिन जीवन में है घोर उदासी।।

नींद नहीं आती पल को भी,
पलकों की है करुण कहानी,
सुधियों का सावन भर देता
आँखों के कलशों में पानी,

बदली–सी छायी रहती है उर्मिल पीड़ा बारहमासी।
ओ मेरे मनभावन! तुम–बिन जीवन में है घोर उदासी।।

यह तो है संसार, यहाँ पर
सबका रहता आना–जाना,
किन्तु; प्रेम के अवलम्बन–बिन
मन को मिलता नहीं ठिकाना,

प्रेम–बिना 'मधुरेश' व्यर्थ है वृन्दावन हो या हो कासी।
ओ मेरे मनभावन! तुम–बिन जीवन में है घोर उदासी।।

तुम्हीं सभी कुछ सदा हमारे

अनादि जय–जय, अनन्त जय–जय, अपार गाथा प्रभो! तुम्हारी।
कृपा करो हे परेश स्वामी! सदैव रक्षा करो हमारी।।

तुम्हीं हो माता, पिता तुम्हीं हो,
प्रभो! तुम्हीं हो सखा हमारे,
तुम्हीं हो विद्या, विभव तुम्हीं हो,
तुम्हीं सभी कुछ सदा हमारे,

सुर–वेद गाते, न पार पाते, महिमा तुम्हारी है नाथ! न्यारी।
कृपा करो हे परेश स्वामी! सदैव रक्षा करो हमारी।।

तुम्हीं हो निर्गुण, सगुण तुम्हीं हो,
तुम्हीं चराचर के मूल कर्ता,
तुम्हीं हो धर्ता, भर्ता तुम्हीं हो,
तुम्हीं हो सबके सर्वस्व–हर्ता,

अणु भी तुम्हीं हो, विभु भी तुम्हीं हो, सनातनी शक्ति तुम्हीं हो सारी।
कृपा करो हे परेश स्वामी! सदैव रक्षा करो हमारी।।

तुम्हीं निरंजन, भव–भीति–भंजन,
जनलोक–रंजन, सर्वस्व–दाता,
तुम्हीं विधाता सौभाग्य के हो,
प्रभो! तुम्हीं ज्ञेय हो, ज्ञान–ज्ञाता,

सूरत तुम्हारी, मूरत तुम्हारी, ऐसा भला कौन? जिसको न प्यारी।
कृपा करो हे परेश स्वामी! सदैव रक्षा करो हमारी।।

ज्ञानी या ध्यानी या हो गुमानी,
कोई तुम्हारा न पार पाये,
जिस पर तुम्हारी कृपा हो भारी
वही धरा पर निस्तार पाये,

करते–कराते तुम्हीं सभी कुछ 'मधुरेश' नर हो या हो कि नारी।
कृपा करो हे परेश स्वामी! सदैव रक्षा करो हमारी।।

मीरा वसन्त-बहार बनी

(सवैया)

पति मान सदा बृजनन्दन को
नित नेह की ज्योति जगाती रही,
पद बाँध के घूँघुर भाव-भरे
पद-गीत मनोहर गाती रही।

मुद मान अनेक विपत्तियों को
निज अंक निशंक लगाती रही,
जन के मन से 'मधुरेश' सदैव
महा भव-भीति भगाती रही।।1।।

जड़ता-भरे ज्ञान की बेड़ियों को
झट काटने को तलवार बनी,
अबला-कुल दीन-दुखी जन को
शुचि प्यार भरा उपचार बनी।

निज देह-सितार पै नेह के तार की
भाव - भरी झनकार बनी।
हरि-भक्ति के कानन-कुंजन को
नित मीरा वसन्त-बहार बनी।।3।।

कुल-मान-गुमान को खो करके
बृजचन्द्र के प्रेम में खो गयी मीरा।
जन-मानस में हरि-भक्ति के बीज
बिना भय शाश्वत बो गयी मीरा।

निज अंक कलंक के दाग सभी
शुचि प्रेम के नीर से धो गयी मीरा।
'मधुरेश' भई हरि के ही लिये,
हरि रूप अनूपम हो गयी मीरा।।3।।

धन्य वही जन

(सवैया)

जीवन ज्योतित हो न सके, जग में वह जीव जिया न जिया,
प्रेम–सुधा को पिया न कभी, रस और अनेक पिया न पिया।
ज्ञान लिया नहीं आत्मस्वरूप का, तो बहु ज्ञान लिया न लिया,
मान–समेत न दान दिया, बहु संपति दान दिया न दिया।।1।।

पुण्य कदापि कमा न सका, धन–संपति–भोग कमाया, तो क्या,
राम में चित्त रमा न सका, भव–काम में चित्त रमाया, तो क्या ?
काम किसी के भी आ न सका, रति–काम के काम में आया, तो क्या,
गाया नहीं हरि का गुण–गौरव, गौरव लोक का गाया, तो क्या ??2??

जन्म लिया जिस भारत में, उसके हित शीश कटाना भला,
मान नहीं जहाँ नेह समेत, वहाँ पै कदापि न जाना भला।
लोक का शोक मिटे जिससे, वह जीवन–ज्योति–जगाना भला,
छोड़ प्रपंच सभी 'मधुरेश' सदा हरि के गुण गाना भला ।।3।।

फूल नहीं वह हार बना, जिसमें मनमोहक वास नहीं,
हो न सुखी जिससे जड़–चेतन, है वह तो मधुमास नहीं।
है 'मधुरेश' नहीं वह मानव, मानवता का जो दास नहीं,
कैसे सुराज कहें उसको, जिसमें कि सभी को सुपास नहीं ।।4।।

जीवन ज्योतित है जिसका यश–चन्द्र सदैव उजागर है,
मानवता जिसमें विलसे, जो कि काव्य–कलाविद्–नागर है।
है अभिमान का लेश नहीं, 'मधुरेश' जो धर्म में आगर है,
मानव मान्य महान वही, जो सदा सद्भाव का सागर है ।।5।।

धन्य वही जन, जो जगजीवन में सद्भाव जगाता सदा,
शोषित–पीड़ित–वंचितों के मन से भव–भीति भगाता सदा।
दीन–मलीन दुखी जन को 'मधुरेश' जो अंक लगाता सदा,
जान सदा सुखसागर, राम के पुण्य भरे गुण गाता सदा ।।6।।

प्रेम योगिनी मीरा

(घनाक्षरी)

प्रेम करती थी अविराम एक श्याम से ही,
राधा के समान प्रेम–योगिनी अधीरा थी।
प्रेम के विधान और ठान ठानती थी नित्य,
पूर्ण प्रेम की ही पुण्य नदी सदानीरा थी।
प्रेम–कान्ति कभी भी न जिसकी हुई थी मन्द,
ऐसी प्रेमाभक्ति का तो अनमोल हीरा थी।
'मधुरेश' जानते हैं मानते सुजान सभी,
दीप–ज्योति जैसी दिव्य प्रेम–मूर्ति मीरा थी।।1।।

त्याग कर भौतिक सुखों को भली–भाँति नित्य
सहज विराग की ही ज्योति को जगाती थी।
कृष्ण में ही मति–गति, कृष्ण में प्रणति–रति,
सानुराग कृष्ण के ही प्रेम–गीत गाती थी।
तृण के समान मान घोर कलिकाल को भी,
सारी भव–भीति लोक–मन से भगाती थी।
'मधुरेश' दीन–दुखी–दलित जनों को मीरा,
हरि के समान निज अंक से लगाती थी।।2।।

निराकारवादी घोर नास्तिकों के चित्त को भी
ब्रह्म के सगुण कृष्ण–रूप में रमा गयी।
रोग के समान मान राजभोग को सदैव
नाम का रतन–धन लोक में कमा गयी।
प्रेम–सिन्धु में नहाई 'मधुरेश' मीरा बाई,
रंग भक्तिभाव का समाज में जमा गयी।
श्याम में रमी थी वह, उसमें रमे थे श्याम,
श्याम! श्याम! रट घनश्याम में समा गयी।।3।।

तुलसी का अवदान

(घनाक्षरी)

छायी थी निराशा–निशा भारत में चारो ओर,
घोर अन्धकार में बिहान बने तुलसी।

सारे जन–मानस को 'मानस' से जोड़ दिया,
दिव्य दीप्तिमान दिनमान बने तुलसी,

मानवीय मंगल का देकर महान मंत्र,
मानव अतीव महिमान बने तुलसी।

'मधुरेश' सत्य–शिव–सुन्दर की साधना से
अपने स्वयं उपमान बने तुलसी।।1।।

राम का चरित–रस 'मानस' में भर दिया,
तान दिया विश्व–बीच भक्ति का वितान है।

एक–एक पंक्ति में अनेक भाव–रस भरे,
ज्ञान–भक्ति–कर्म–योग सब का निधान है।

हरता है जन–मन, करता सधन नित्य,
सत्–चित्–आनँद का दिव्य उद्‌गान है।

काव्य–कला–कानन को मधुमास के समान,
'मधुरेश' तुलसी का दिव्य अवदान है।।2।।

भारी भव–सागर में भ्रमित जनों की नाव
सहज–सुखेन सदा पार है उतारती।

चारो फल देती है सभी को साधु साधना से,
लोक–परलोक के सुपथ को सँवारती।

धारती न धीर, पीर किसी की भी हरने में,
कलि–केहरी के काय–कुम्भ को विदारती,

भारती–भवन में विराजमान 'मधुरेश'
मंगलमयी है भूरि तुलसी की भारती।।3।।

ब्रज-वैभव

(घनाक्षरी)

नन्दगाँव, गोकुल, गोवर्धन की काह कहौं,
काह कहौं गोपी–गोप ग्वालबाल–गैया की।
काह कहौं बरसाना, मथुरा की काह कहौं,
काह कहौं यमुना औ' वंशीवट–छैया की।

वृन्दावन–बीच बाग –बीथिन की काह कहौं,
काह कहौं राग–रंग उत्सव–समैया की।
'मधुरेश' मन तौ मगन– उनमन रहै
देखि छबि कीरतिकुँआरी औ' कन्हैया की।।1।।

जहाँ–जहाँ जाव, तहाँ राधे–राधे होय रह्यो,
महिमा निराली नित्य पुण्यभूमि ब्रज की।
नैन न अघात राधा–कृष्ण की निहारि छबि,
भाषत बनै न नीके शोभा सज–धज की।

तारत–उधारत–सुधारत अनेकन को,
कहने को केवल कहानी ग्राह–गज की।
'मधुरेश' लालसा सदैव सन्त–सज्जन को
युगल बिहारी के पदारविन्द–रज की।।2।।

कृष्ण! कृष्ण! कहि लोग तन–मन–जीवन को
दिव्य भक्ति–भाव के निकष में कसत हैं।
भाँति–भाँति रंग की तरंग में अनेक रस
रातदिन चारो ओर यहाँ बरसत हैं।

चेतन की बात कौन, पाहन–अचेतन हूँ
झूमि–झूमि उमगि–उमगि हरसत हैं।
राधे–राधे ! राधे–राधे ! रटैं 'मधुरेश' सदा
ब्रज के तो प्राण एक राधे में बसत हैं।।3।।

राम का गुलाम

(घनाक्षरी)

कामिनी–कनक की न कामना कदापि मुझे,
भावना भरी है भव्य भारती की मन में।
एक राम–नाम अभिराम लगे आठो याम,
भवन में रहूँ या रहूँ मैं घोर वन में।

पर–वाह की न कभी परवाह करता हूँ,
लोभ–लालसा न रंच इन्द्र के भी धन में।
चित्तवृत्ति–चातकी की चाह रहती है नित्य
'मधुरेश' एक अखिलेश राम–घन में।।1।।

ज्ञान–गुण–गरिमा का कोई भी निशान नहीं,
जीवन में मेरे राम–कृपा ही प्रधान है।
भक्ति–अनुरक्ति या विरक्ति भी न मुझमें है,
सविशेष कर्मयोग का भी न विधान है।

लोक–परलोक की न परवाह है कदापि,
रहता न मुझे किसी कीर्ति का भी ध्यान है ।
लोक–लोचनाभिराम 'राम का गुलाम' हूँ मैं,
'मधुरेश' को तो एक यही अभिमान है।।2।।

सब में रमे हैं और जिनमें रमे हैं सभी,
तत्त्वतः एक, किन्तु भिन्न–भिन्न नाम हैं।
नित्य अव्यक्त, कभी व्यक्त होते कृपावश,
लीला अभिराम, लोक–लोचनाभिराम हैं।

सत्–चित्–आनँदस्वरूप रूप है अनन्य,
अज–अविनाशी–अखिलेश सुखधाम हैं।
उन्हीं राम में ही मति–गति औ' प्रणति–रति,
'मधुरेश' के तो वे ही परमेश राम हैं।।3।।

राम की शरण में

(घनाक्षरी)

राम रघुनाथ हाथ थाम लेते जिसका भी,
यमराज का न कभी होता उसे सामना।
राम की कृपालु कोर पाये बिन किसी को भी
किसी भाँति मिलता कदापि सुख–धाम ना।
राम की शरण–बिन 'मधुरेश' जीवन में
जीवन को होत कभी शोक–उपराम ना।
जाकी यहाँ कामना है, वाको वहाँ काम ना है,
जाकी वहाँ कामना है, वाको यहाँ काम ना ।।1।।

सावधान मन! न कदापि रहे गतभान,
राम की भगति में ही सबै भाँति डटु रे!
सत्य–शील–स्नेह–सद्भाव की जगाये ज्योति
न्याय के सुपथ से तू भूले हूँ न हटु रे!
'मधुरेश' क्लेश–कष्ट शेष न रहेंगे तेरे,
काहे को करत कोटि क्रूरता–कपटु रे!
राम–राम! राम–राम! राम–राम! राम–राम,
आठो याम राम–राम! राम–राम! रटु रे!!2!!

ऐ रे जीव! जीवन में चाहे जो विपत्ति पड़े,
तेज को सँभार, कभी हिम्मत न हार तू।
सदा सत्य–स्नेह–शील–शान्ति–सद्भावना से
लोक को सँवार, परलोक को सुधार तू।
बन तू उदार, 'मधुरेश' मन को न मार,
माया–मोह–ममता के मद से उबार तू।
राम की शरण रूपी नौका पै सवार होके,
भारी भव–सागर से अपने को तार तू।।3।।

राम में रमत तुम

(घनाक्षरी)

विद्या–बल–बुद्धि के निधान, पवमानपुत्र
वीर आंजनेय राम–भक्ति उर–धारे हैं।

चाहे जैसी जटिल विपत्तियाँ पड़ी हों, किन्तु
उनको विदारने में साहस न हारे हैं।

जो भी जन उनकी शरण के सहारे रहें,
उनके लिये तो सभी भाँति रखवारे हैं।

'मधुरेश' मैथिली के दयित–दुलारे और
राम के तो हनूमान नयनों के तारे हैं।।1।।

जिनकी कृपालु दृष्टि–तेज के समक्ष कभी
चली नहीं मति–गति विधि के विधान की।

जिनको सपूत मान देती हैं अकूत नेह
राम की अभिन्न शक्ति भक्तिमयी जानकी।

जिनपै उदार प्रेम–धार पड़ती है सदा
नित्य परमेश राम करुणानिधान की।

'मधुरेश' महिमा अपार, पार पावे कौन
केशरीकुमार महावीर हनूमान की।।2।।

राम में रमत तुम, तुम में रमत राम,
महावीर! महिमा तुम्हारी अभिराम है।

भेद में अभेद, भेदाभेद वेद–सिद्ध नित्य
भेद–लीला पुण्यमय पावन प्रकाम है।

'मधुरेश' क्लेश–कष्ट शेष न रहत रंच
शरण तुम्हारी त्रयताप को विराम है।

करो कृपा–कोर नाथ! करुणा पसारि अब,
पावन पदों में कोटि–कोटिक प्रणाम है।।3।।

रहीम के न राम के

(घनाक्षरी)

सुरस–सुबास होते नहीं जिन सुमनों में
मधुपी–मधुप उनके न गुण गाते हैं।
पुण्यश्लोक कवियों की लेखनी है धन्य–धन्य,
देश–प्रेम की सदैव ज्योति जो जगाते हैं।
वे ही वीर बाँके हैं लड़ाके सब के प्रणम्य,
जा के रण में, न काल से जो भय खाते हैं।
'मधुरेश' मानव महान वे ही होते यहाँ,
सत्य–न्याय–धर्म के जो सुमन खिलाते हैं।।1।।

स्वाभिमान जिनमें न देश–धर्म का कदापि,
किन्तु; धरती पै मूर्तिमान अभिमान हैं।
दम्भ–दर्प में जो नित्यमेव सुख माने हुए
घोर ईर्ष्या–द्वेष के ही तानते वितान हैं।
सत्य–न्याय–सेवा–प्रेम से न जिनको है प्रेम,
कपट–कुचाल क्लेश–कलह की खान हैं।
'मधुरेश' ऐसे जीव मानव–शरीर में भी
दानव समान, भूत–प्रेत के समान हैं।।2।।

सभ्य वेष धारे हुए, सूरत सँवारे हुए
किंकर हैं क्रूर कर्म, कंचन के, काम के।
जाति–पंथ–वर्गवादी ध्वज को उठाये हुए
भोगते हैं भोग सभी केवल हराम के।।
जो भी जन लोक में बढ़ाते द्रोह–द्वेष, वे तो
सत्य के न धर्म के, रहीम के न राम के।।
जिनमें न मानवीय जीवन की जागी ज्योति,
'मधुरेश' ऐसे लोग मानव हैं नाम के ।।3।।

मनुष्य-सृष्टि-कर्म

(घनाक्षरी)

लाख चवरासी योनियों में श्रेष्ठ मानव की
महिमा सदैव वेद–विबुध बखानते ।
मानव–शरीर में भी वे ही लोग धन्य यहाँ,
जो न अपने को महिमान कभी मानते।

धन–बल–यौवन के मद से सदैव दूर,
जो न अभिमान के वितान घोर तानते।
'मधुरेश' मानव महान वे ही नित्य हैं, जो
मानवीय मंगल के पुण्य ठान ठानते।। 1।।

सृष्टि में अनेक ब्रह्म–अण्ड हैं विराजमान,
धारे हुए सबको सदैव आसमान है।
पृथिवी हमारे सौरमण्डल में भ्राजमान
सभी जीवधारियों के सुख का निधान है।

सुधा के समान इसी वसुधा पै चारो ओर
'मधुरेश' मानवीय सृष्टि का विधान है।
भूमि–मुद्रिका में विद्यमान देश भारत तो
दिव्य दीप्तिमान एक नग के समान है।।2।।

कर्म ही प्रधान महिमान लोक–मण्डल में,
कर्म ही सदैव सुख–दुःख का निदान है।
कर्मजाल में ही फँसे, ग्रसे सभी जीव यहाँ,
सारा सृष्टिलोक मात्र कर्म का विधान है।

'मधुरेश' पाप–पुण्य स्वर्ग–नर्क कर्म में ही,
कर्म से ही अस्त और कर्म से विहांन है।
कर्म किये बिना रह सकता न कोई कहीं,
कर्म के बिना तो जीव शव के समान है।।3।।

संसुप्त शौर्य! अब जाग

ओ अखिल विश्व–मानवता के संसुप्त शौर्य! अब जाग–जाग।
तू देख, धरा पर लगा रहे आतंकासुर आतंक–आग।

धरती के कोने–कोने में
दानवता के बढ़ रहे चरण,
है नहीं शान्ति–सद्भाव कहीं,
मानव–मूल्यों का हुआ क्षरण,

फुंकार रहे हर ओर घोर फन फैलाये विद्रोह–नाग।
ओ अखिल विश्व–मानवता के संसुप्त शौर्य! अब जाग–जाग।।

भौतिक विज्ञान स्वयं बढ़कर
कर रहा प्रलयकर परिवर्तन,
विक्षुब्ध हो रहे जल–थल–नभ,
कर रहा काल ताण्डव नर्तन,

मारक अस्त्रों को पा कर के गा रहे सभी अब प्रलय–राग।
ओ अखिल विश्व–मानवता के संसुप्त शौर्य! अब जाग–जाग।।

मानवता के बिन तो जग में,
सच्चा मानव–उत्थान नहीं,
मानव महान है वही, यहाँ
जिसमें आसुर अभिमान नहीं,

मानवता का रक्षक ही तो होता है धरती का सुहाग।
ओ अखिल विश्व–मानवता के संसुप्त शौर्य! अब जाग–जाग।।

कर रही त्राहि! मानवता, अब
आतंकासुर का करो दहन,
इन अघी–अधर्मी असुरों के
अपकर्म न अब हो रहे सहन,

'मधुरेश' देश के लिये करो अपने प्राणों का मोह–त्याग।
ओ अखिल विश्व–मानवता के संसुप्त शौर्य! अब जाग–जाग।।

सावधान मानवो!

सावधान मानवो! न मन में कोई भ्रम तुम पालो।
फूल–शूल को एक राशि में भूल कभी मत डालो।।

फूल शूल का काम न करता,
शूल न हरता मन को,
खोज रहे क्यों व्यर्थ शूल में
फूलों के तन–धन को,

भीषण भ्रम के अन्धकूप से मन को अभी निकालो।
सावधान मानवो! न मन में कोई भ्रम तुम पालो।।

मानवता–दानवता दोनों
भिन्न–भिन्न हैं राहें,
दानवता के पथिक कभी
मानवता को न निवाहें,

जिससे असमंजस मिट जाये, ऐसी ज्योति जगा लो।
सावधान मानवो! न मन में कोई भ्रम तुम पालो।।

मानवता को अपनी रक्षा
खुद ही करनी होगी,
ओज–तेज की ज्योति–दीपिका
पग–पग धारनी होगी,

वीरभाव के साँचा में ही, उठो–स्वयं को ढालो।
सावधान मानवो! न मन में कोई भ्रम तुम पालो।।

कहता है इतिहास मर गये
डर से डरने वाले,
लेकिन कर्म–प्रकाश कर गये
साहस करने वाले,

सदा सनातन सत्य–धर्म को अपने गले लगा लो।
सावधान मानवो! न मन में कोई भ्रम तुम पालो।।

अपना हिन्दुस्तान

सारे जग में जगमग–जाग्रत अपना हिन्दुस्तान है।
युगों–युगों से भारत–भू की अपनी शुभ पहचान है।।

मानवकुल की आदिभूमि यह
मानवता का वास है,
इसके कण–कण में परिलक्षित
एक दिव्य उद्भास है,

इसी भूमि का देवों ने भी किया नित्य जयगान है।
सारे जग में जगमग–जाग्रत अपना हिन्दुस्तान है।।

जीवन की कल–कल ध्वनि होती
नदियों की जलधार में,
भारत की आत्मा वसती है
सत्य – धर्म में, प्यार में,

वेदों में भी गूँज रहा इस धरती का उद्गान है।
सारे जग में जगमग–जाग्रत अपना हिन्दुस्तान है।।

कण्ठहार बन कर विराजतीं
यहाँ विविध विध बोलियाँ,
रहीं उतरती इसी भूमि पर
परियों की भी डोलियाँ,

स्वाभिमान से दीपित इसका मस्तक सूर्य–समान है।
सारे जग में जगमग–जाग्रत अपना हिन्दुस्तान है।।

उत्तर दिशि में खड़ा हिमालय
वीर भाव को धारता,
महासिन्धु इसके चरणों को
सादर सदा पखारता,

नित्य नवल 'मधुरेश' देश यह धीर–वीर बलवान है।
सारे जग में जगमग–जाग्रत अपना हिन्दुस्तान है।।

कहाँ बचेगा हिन्दुस्तान ?

हिन्दू ही जब नहीं बचेगा, कहाँ बचेगा हिन्दुस्तान ?
सावधान ओ देशवासियो! मेटो मत अपनी पहचान।।

हिन्दू को जो कोस रहे, वे
समझें हिन्दू का शुभ मर्म,
हिन्दू कोई जाति न, यह तो
सबको सुखद सनातन धर्म,

नहीं विश्व में कोई संस्कृति पावन है हिन्दुत्व–समान।
सावधान ओ देशवासियो! मेटो मत अपनी पहचान।।

है हिन्दू–हिन्दुत्व लोक में
सदा प्रवाहित सरिता–नीर,
ऊँचाई में नील गगन–सम,
गहराई में सिन्धु गँभीर,

सच्चा हिन्दू सदा सत्य–शिव–सुन्दर का करता उद्‌गान।
सावधान ओ देशवासियो! मेटो मत अपनी पहचान।।

मानवता के प्रेम–पटल पर
है हिन्दुत्व सदा अनमोल,
नहीं पीटता अहंकारमय
दानवता के ऊँचे ढोल,

सदा त्याग–तप–तेज–दिवाकर से रहता है यह द्युतिमान।
सावधान ओ देशवासियो! मेटो मत अपनी पहचान।।

'विश्व एक परिवार', रहा है
हिन्दू–संस्कृति का शुभ मंत्र,
सभी सुखी, सारोग्य सभी हों
और सभी हों सदा स्वतंत्र,

रुके नहीं 'मधुरेश' कभी भी हिन्दू–संस्कृति का उत्थान।
सावधान ओ देशवासियो! मेटो मत अपनी पहचान।।

अहंकार के बजे नगाड़े

अहंकार के बजे नगाड़े ढम–ढम ढम–ढम–ढम।
बोल रहे मत–मजहब सारे, सबमें सच्चे हम।।

कोई कहता, जग में सच्चा
एक हमारा ज्ञान,
कोई कहता–हमीं ब्रह्म हैं,
हमीं स्वयं भगवान,

पंथ–मोह के घटाटोप में हुआ सभी को भ्रम।
अहंकार के बजे नगाड़े ढम–ढम ढम–ढम–ढम।।

बोलो, कैसे बन सकता है
विश्व एक परिवार,
जहाँ परस्पर सभी कर रहे
एक – एक पर वार,

कोई नहीं स्वयं को कहता कहीं किसी से कम।
अहंकार के बजे नगाड़े ढम–ढम ढम–ढम–ढम।।

धर्म और ईश्वर को लेकर
बढ़े भयंकर भेद,
मानव–मति का छेद यही है,
मानवता को खेद,

अन्ध पुरोधा मत–मजहब के लहराते परचम।
अहंकार के बजे नगाड़े ढम–ढम ढम–ढम–ढम।।

वस्तुतस्तु अस्तित्व एक है,
एक नित्य परमेश,
वह सबका है, सब उसके हैं,
कोई नहीं विशेष,

क्यों 'मधुरेश' फोड़ता कोई अहंवाद के बम ?
अहंकार के बजे नगाड़े ढम–ढम ढम–ढम–ढम।।

वह मानव है कैसा ?

सावधान! इंसान नहीं हैं इस धरती पर सारे।
मानव–तन में घूम रहे हैं दानव जन–हत्यारे।।

निरपराध की हिंसा करते
महा अधम – अभिमानी,
पी कर महा मोह–मद–मदिरा
करते अति मनमानी,

इनके मारे मारे–मारे फिरते जन बेचारे।
सावधान! इंसान नहीं हैं इस धरती पर सारे।।

मानवता को मार रहा जो,
वह मानव है कैसा,
उसका तो उपचार एक ही
बस, जैसे को तैसा

ऐसों के ही लिये राम ने धनुष–बाण थे धारे।
सावधान! इंसान नहीं हैं इस धरती पर सारे।।

इनका कोई धर्म नहीं है,
ये अधर्म के जोधा,
केवल दानवता के ही ये
बनते वीर पुरोधा,

निरा अहिंसा के अनुयायी अनुदिन इनसे हारे।
सावधान! इंसान नहीं हैं इस धरती पर सारे।।

लोहा, लोहा से ही कटता,
काठ न लोहा काटे,
नहीं मानता नीच कभी भी
केवल हँस कर डाँटे,

मार सके 'मधुरेश' इन्हें जो, वही विश्व को तारे।
सावधान! इंसान नहीं हैं इस धरती पर सारे।।

वह मानव है नाम का

जो धन जन के काम न आये, ऐसा धन किस काम का ?
मानवता जिससे मुरझाये, वह मानव है नाम का।।

नहीं किसी का सदा ठिकाना
इस नश्वर संसार में,
परमेश्वर का प्यार मिला है
मानवता से प्यार में,

मानवता से ही मिलता है धाम सदा सुखधाम का।
मानवता जिससे मुरझाये, वह मानव है नाम का।।

मानवता से बढ़कर जग में
और न कोई धर्म है,
मानवता ही मानव–कुल का
सदा सनातन कर्म है,

मानवता ही महासिन्धु है मंगलमय गुण–ग्राम का।
मानवता जिससे मुरझाये, वह मानव है नाम का।।

प्रातः होते ही विहंगकुल
बोल रसीले बोलते,
मानवता की ही सेवा में
सहज प्रेम – रस घोलते,

दिनकर से मिलता प्रकाश नित अग–जग को बिन दाम का।
मानवता जिससे मुरझाये, वह मानव है नाम का।।

खिल–खिल खिल कर फूल सभी को
खुशी लुटाते प्यार में,
जीवन–जल कल–कल बहता है
नदी – नदों की धार में,

जो 'मधुरेश' न परहित करता, उसका जन्म हराम का।
मानवता जिससे मुरझाये, वह मानव है नाम का।।

राम कहो या अल्ला

परम तत्त्व परमेश एक है, राम कहो या अल्ला।
कोई अपने अहंकार का मचा रहे क्यों हल्ला ??

हुए एक से एक यहाँ पर
धनी – बली – अभिमानी,
किन्तु किसी के बल–वैभव की
बची न एक निशानी,

गया अंत में देह त्याग कर प्राणी निपट इकल्ला।
परम तत्त्व परमेश एक है, राम कहो या अल्ला।।

महामूढ़ मतिमन्द मोहवश
जाने या अनजाने,
चारो ओर वितान भयंकर
अहंकार के ताने,

चला रहे हैं अपने–अपने मत–मजहब के बल्ला।
परम तत्त्व परमेश एक है, राम कहो या अल्ला।।

जिसने भी अपने मजहब की
अहम्मन्यता ठानी,
मनमानी के अस्त्र चला वह
करता है शैतानी,

केवल दानवता का ही वह पकड़े रहता पल्ला।
परम तत्त्व परमेश एक है, राम कहो या अल्ला।।

अहम्वाद के घोर पुरोधा
दानवता अपनाते,
मानवता का मर्दन करके
फूले नहीं समाते,

किन्तु; किसी के साथ न जाता लोहे का भी छल्ला।
परम तत्त्व परमेश एक है, राम कहो या अल्ला।।

पद-1

जय समर्थ रघुवीर!

जय–जय श्री समर्थ रघुवीर!
सगुण ब्रह्म साकार परम प्रभु हरत साधु–सज्जन की पीर।।
वेद–पुराण सुयश नित गावत, विधि–हरि–हर सब शीश नवावत,
सुर–नर–मुनि अतिशय सुख पावत, जयति धर्म–पालक प्रणवीर!
जय–जय श्री समर्थ रघुवीर!!

अशरण–शरण, दयालु कृपाकर, तुम्हीं ज्ञान–विज्ञान–दिवाकर,
सन्त–सुजन–कुल–कुमुद–सुधाकर, नीलाम्बुज–सम श्याम शरीर।
जय–जय श्री समर्थ रघुवीर!!

जय राघव, सीतापति जय–जय, सर्वेश्वर, मायापति जय–जय,
हाथे शर–धनु सदा विराजत, काँधे पर अक्षय तूणीर।
जय–जय श्री समर्थ रघुवीर!!

रूप अनूपम छवि मनभावन, चरित उदार सुयश अति पावन,
तुम्हीं विराट, तुम्हीं प्रभु! बावन, धर्म–धुरंधर जय रणधीर।
जय–जय श्री समर्थ रघुवीर!!

जय–जय–जय साकेतविहारी, जय–जय परम ब्रह्म–अवतारी,
हाथ जोरि 'मधुरेश' मनावत, मेटउ सकल भाँति भव–भीर।
जय–जय श्री समर्थ रघुवीर!!

पद-2

भव–दुख कौन हरैया?

हरि–बिन भव–दुख कौन हरइया ?
हरि ही सबके मात–पिता हैं, हरि ही सबते प्रेम करइया।
हरि–बिन भव–दुख कौन हरइया ??
देख्यों बहुत विचारि जगत में स्वारथ के सब लोग–लुगइया।
बिन स्वारथ पूछै ना कोऊ नात–गोत भगिनी औ' भइया।
का सत्संग–कथा? का कीर्तन? नाच–गान का ता–ता–थइया।
कलि–प्रभाव ते भाव बिगरिगे, सब को लागै नीक रुपइया।
भवनिधि अगम–अपार भयानक, डगमगाति है जीवन–नइया।
चरण–शरण 'मधुरेश' न छोड़उ, हरि ही जीवन पार लगइया।।

पद–3

अब तो आँखें खोल

रे मन! अब तो आँखें खोल।
भव–सागर में बहा जा रहा जीवन–धन अनमोल।
रे मन! अब तो आँखें खोल।।

परम लक्ष्य से भटक गया क्यों, गया धर्म को भूल,
लोक–वासना, धन–संपति में रहा रात–दिन फूल,
माया–नटिनी के वश में पड़ हो गया लम्पट–लोल ।
रे मन! अब तो आँखें खोल।।

तन–बल, धन–बल, यौवन–बल पर क्यों करता अभिमान,
आसमान तक तान रहा क्यों अघ के घोर वितान,
मोह–मूढ़ तू पीट रहा क्यों दुरभिमान के ढोल ?
रे मन! अब तो आँखें खोल।।

अंत समय में जा न सकेगा कुछ भी तेरे साथ,
अहंकारवश भटक रहा क्यों करके ऊँचा माथ,
जग में सबके साथ सदा तू सहज प्रेमरस घोल।
रे मन! अब तो आँखें खोल।।

सावधान यदि नहीं हुआ तू, रे मन ! अबकी बार,
तो कैसे कर पायेगा तू जीवन का उद्धार,
परमेश्वर की प्रेम–तुला पर तू अपने को तोल।
रे मन! अब तो आँखें खोल।।

कर से कर उपकार लोक का, हिय से जप हरि–नाम,
सत्य–न्याय–सत् की संगति में रह तू आठो याम,
बोल सदा 'मधुरेश' सभी से प्रेम–भरे रसबोल।
रे मन! अब तो आँखें खोल।।

पद–4

मुझको नहीं विसारो

मुझको नहीं विसारो प्रभु जी! मुझको नहीं विसारो।
दीन–मलीन–हीन हौं सब विधि, करके कृपा निहारो।।

अशरण–शरण कहावत जग में, आपन विरुद विचारो।
तीनौ ताप जरावत मोकों, हे हरि! बेगि निवारो।।
अगनित कै तुम बहुत बनायौ, बिगरी मोरि सुधारो।
हाथ जोरि मैं करौं चिरौरी, विनय न अब तुम टारो।।
योग–यज्ञ–साधन–धन–बिन हौं, सब विधि बात सँवारो।
विनय मानि 'मधुरेश' जानि जन भवसागर ते तारो।।

पद–5

कब खोलोगे नैन?

प्रभु जी! कब खोलोगे नैन?
तुम्हरी कृपा–दृष्टि–बिन अब तो चित्त बहुत बेचैन।।
तन–मन–धन सब तुम पर वारत, अग–जग के गुण–दोष विसारत,
प्रभुजी! तुम्हरी ओर निहारत बीतत हैं दिन–रैन।
प्रभुजी! कब खोलोगे नैन ??

हे परमेश्वर भव–भय–भंजन, सकल भाँति निज जन–मन–रंजन,
तुम ही सदा सत्य सुख–सागर, तुम ही करुणा–अैन।
प्रभुजी! कब खोलोगे नैन ??

रूप अनूप महाछवि सोहति, मुख–मण्डल–छबि मुनि–मन मोहति,
सकल भाँति 'मधुरेश' मधुरिमा प्रभु की कहत बनै न।
प्रभुजी! कब खोलोगे नैन ??

पद–6

प्रेम–पदारथ पइहै

रे मन! जौ तू हरि–गुण गइहै।
तौ करुणाकर की करुणा से प्रेम–पदारथ पइहै।।
चौरासी लख में दुर्लभ तन–जीवन सफल बनइहै।
आठ पहर दिनरात प्रेम के सागर–बीच नहइहै।।
विषम विषय–विष–व्याल–काल ते भूलेहूँ न डँसइहै।
जीवन–ज्योति जगैगी जगमग, जम के द्वार न जइहै।।
महा ठगिनि माया के हाथन कबहूँ नाहि ठगइहै।
है 'मधुरेश' बात जो बिगरी बनत–बनत बनि जइहै।।

पद-7

राम-बिना भव-झाम न छूटत

राम-नाम-रस सब ते भारी।
तीन लोक, तिहुँ काल सुधा-सम सबको अति उपकारी।।
जब चाहैं, तब पियैं सदा जन बाल-बृद्ध नर-नारी।
राम-नाम में नित्य निहित हैं ऋद्धि-सिद्धि-निधि सारी।।
राम-नाम की भक्ति-शक्ति से कलि की गति-मति हारी।
राम-नाम अविराम कीर्तन करत सदा सुविचारी।।
राम-बिना भव-झाम न छूटत, जीवन होत बिकारी।
राम-नाम-रसपान निरन्तर करत महेश पुरारी।।
राम-नाम-रस सींचे जीवन होत कल्प-फुलवारी।
है 'मधुरेश' राम की महिमा सब नामन ते न्यारी।।

पद-8

हरि-सुमिरन करिये दिन-रात

हरि-सुमिरन करिये दिनरात।
हरि-सुमिरन-बिन मानव-तन की बनै न एकौ बात।।
हरि-सुमिरन ते शक्ति भक्ति कै अधिकाधिक अधिकात।
हरि-सुमिरन ते पाप-ताप सब तीनिउ काल बिलात।।
लोककर्म कीन्हे नाना विधि कटत न यम के पाश।
हरि की शरण, सदा सुमिरन-बिन होत न भव-भय-नाश।।
ज्यों मणिहार न बनै सूत-बिन, सूत हार – आधार।
त्यों बहुकर्म करत हरि-सुमिरन हरत सकल दुख-भार।।
साँस-साँस में हरि-सुमिरन ते होत आत्म-उद्धार।
टूटै ना 'मधुरेश' हृदय ते हरि-सुमिरन कै तार।।

पद-9

माया अजब तुम्हारी

प्रभु जू ! माया अजब तुम्हारी ।
अग-जग सबको वश में कीन्हे नर होवै या नारी।।
ममता-मोह-मान्यता-महिमा, इन सबकै महतारी।
ज्ञानी-ध्यानी-अभिमानिन कै मति-गति यहि ते हारी।।
नव किशलय-दल-सम अति कोमल, पवि ते कठिन-करारी।
छूटत नाहि छुटाये सहजै, पल-पल होवै भारी।।
दुःख-दोष के फल बहु लागत, यह अइसनि फुलवारी।
बाँके नैन, बैन रस-घोरे, हाथे कुटिल कटारी।।
सुर-मुनि-नाग-यक्ष-नर-किन्नर सब यहि पै बलिहारी।
माया ते 'मधुरेश' बचावैं मायापति असुरारी।।

पद–10

कृपा–वृष्टि अब कीजै

हे हरि! कुमति–कुगति हरि लीजै।
दोष–दुःख–दावानल बरसत, तन–मन–जीवन भीजै।।
भटकत–भ्रमत विषय–कानन में मन–मृग इत–उत धावै,
सहज शान्ति–सुख कतहुँ न पावत, माया अति भरमावै,
दिन–दिन होत दोष–दुख दूगुन, छिन–छिन तन–मन छीजै।
हे हरि! कुमति–कुगति हरि लीजै।।

वेद–पुराण–शास्त्र के हितमय बचन न लागत नीके,
तुम्हरी कृपा–बिना रससागर! सब रस लागत फीके,
दीन–मलीन–हीन सब विधि मैं, शिर पै कर धरि दीजै।
हे हरि! कुमति–कुगति हरि लीजै।।

मरु–मृग–सम मन चैन न पावत, रजत सीप कहँ मानै,
लोकवासना के रस–वश परि धूरि जगत की छानै,
अशरण–शरण नाथ करुणामय! कृपा–वृष्टि अब कीजै।
हे हरि! कुमति–कुगति हरि लीजै।।

पद–11

जयति राम रघुनन्दन!

जयति कृपालु राम रघुनन्दन!
अशरण–शरण, सदा सुखदायक, सुरनायक, जय जन–मन–चन्दन!!
नीलाम्बुज–सम देह मनोहर, उर वनमाल, भाल अति सोहत,
बदन कोटि कन्दर्प–दर्पहर, अति अनूप सुर–नर–मुनि मोहत,
परम तत्त्व परमेश स्वयं प्रभु, करत सदा विधि–हर अभिनन्दन।
जयति कृपालु राम रघुनन्दन!!

करुणा–कलित परम कोमल चित सकल कामजित नित्य निरंजन,
महा मोहमद–मत्त महासुर–खल–करिगन के मद–गद–गंजन,
धरउ शीश पै कृपाहस्त प्रभु! हरउ सकल निज जन–गन–क्रंदन।
जयति कृपालु राम रघुनन्दन!!

वेद–पुराण–साधु–सुर–सज्जन विविध भाँति महिमा–गुण गावत,
अमित–अपार सुयश–रस–सागर, ज्ञानी–ध्यानी पार न पावत,
भानुदत्त 'मधुरेश' शीश धरि करत सदा सादर पद–वन्दन।
जयति कृपालु राम रघुनन्दन!!

पद-12

राम-भगति जाके मन भावै

राम-भगति जाके मन भावै।
खान-पान-सम्मान लोक में ताहि न नेकु सुहावै।।
आसन-अशन-वसन-आभूषन साज-सिंगार भुलावै।
तन की सुधि न रहत एकौ छिन, पुनि-पुनि प्रेम पिरावै।।
जग-प्रपंच-छल छोड़ि सबै विधि सदा राम-गुण गावै ।
सत् कै संगति करै रातदिन विरति-विवेक जगावै।।
जानि प्रानपति करै राम-रति, मति-गति चरण रमावै।
धीर धरै 'मधुरेश' न कबहूँ, हिये परम रस पावै।।

पद-13

जस रखिहौ तस रहिहौं

प्रभु! तुम जस रखिहौ, तस रहिहौं।
इच्छा मानि तुम्हारि सकल विधि सारे सुख-दुख सहिहौं।।
तुम ही मातु-पिता-पति, तुमसे सब सम्बन्ध निवहिहौं ।
चरण-कमल-मकरन्द-माधुरी निशिवासर मैं चहिहौं।।
तुम तो मेरे अन्तर्यामी, तुम सों कुछ नहि कहिहौं।
भानुदत्त प्रभु-प्रेम-भगति में सब जीवन-फल लहिहौं।।
प्रभु! तुम जस रखिहौ, तस रहिहौं।।

पद-14

देखे बिन नहि चैन

हरि को देखे बिन नहि चैन।
री सखि! हरि शोभा के सागर, मोसे कहत बनै न।।
नव नीलम-सम कांति मनोहर, तन अतिशय छबि-ऐन।
हरिनी के नैनन ते नीके हैं हरिजू के नैन।।
वेद-पुराण सकल विधि शोभा हरि की बरनि सकैं न।
रहत सदैव दरस-रस-लोभी युगल नयन दिन-रैन।।
सदानन्द सुखधाम श्याम-छबि लखि लाजत शत मैन।
भानुदत्त देखत हरि-मुख-छबि मुख नहि आवत बैन।।

पद–15

किसका कौन सहारा?

हरि–बिन किसका कौन सहारा?
हरि ही सबके कर्ता–भर्ता, हरि ही सबकी जीवन–धारा।।
बड़ी प्रबल है हरि की माया, भीषण भवसागर है खारा।
मायाधीन जीव निशिवासर भव में भटके मारा–मारा।।
स्वार्थलीन मद–पीन मीन–मन विषय–ग्रसित बहुतै बेचारा।
भानुदत्त हरि–अनुकम्पा–बिन कबहुँ न छूटै भव की कारा।।

पद–16

मन! हरि के गुण गावै

रे मन! तू हरि के गुण गावै।
हरि ही नित्य परम अविनाशी, तू हरि को ही ध्यावै।।
जो पावै सो जानै हरि को जो जानै सो पावै।
हरि पद–काम–विटप तजि मूरख! क्यों बबूर फल खावै ??
हरि–शरणागति छोड़ि अरे शठ तू इत–उत क्यों धावै ?
कूकर–शूकर–सम क्यों भटकै, कुमति–कुगति अपनावै।।
माया–नटिनी मोह–पाश ते पुनि–पुनि तोहिं नचावै।
भानुदत्त हरि–बिन कलि–केहरि ते कोऊ न बचावै।।

पद–17

हरि जू हैं हमारे

हम हरि के, हरि जू हैं हमारे।
अशरण–शरण कृपालु दयानिधि हरि हरि हैं हमरे दुख सारे।।
निज जन हेतु न जाने कितने रूप विविध विधि हरि ने धारे।
अनगिन अतिशय अघी–अधर्मी कृपाकोर करि हरि ने तारे।।
हरि–पद छोड़ि अभागे प्राणी भव में भटकैं मारे–मारे।
हरि के चरण–कमल में मन–अलि निशि दिन सोवत पायँ पसारे।।
वेद–पुराण–संत–सुर–सज्जन हरि के गुन–गन गिनि–गिनि हारे।
हरि के बिना कौन ? जो जन को भव–सागर से पार उतारे।।
हरि पद–रति–रस–विमुख अभागे जन जग में अतिशय बेचारे।
भानुदत्त निःशंक रहत है केवल हरि की शरण सहारे।।

पद–18

मैं जुगनू, तुम चन्दा

प्रभू जू! मैं जुगनू, तुम चन्दा।
तुम–सम और न जगमग कोई मो–सम और न मन्दा।।
रीति–प्रीति सुख–संपति सारी, प्रभु जू! महिमा अमित तुम्हारी,
समता कैसे करूँ भला मैं ? मैं रसीद, तुम चन्दा।।
सचराचर के तुम हो स्वामी, तुम ही सबके अन्तर्यामी,
सकल भाँति बलहीन–दीन मैं तो हौं सेवक बन्दा।।
सुयश तुम्हार सिद्ध–सुर गावत, वेद–पुराण पार नहि पावत,
मोरे गरे परा है प्रभु जू! मायामय भव–फन्दा।।
कृपा तुम्हारि जाहि पर होई, भवसागर तरि पावै सोई,
जस चाहौ, तस मोहिं बनावौ, मैं लकड़ी, तुम रन्दा।।

पद–19

दुख़ हरउ राम रघुवीर!

हरउ दुख बेगि राम रघुवीर!
तुम–समान को द्रवत दीन पर हरत घोर भव–पीर??
आधि–व्याधि बहु विध उपाधि ते चित्त धरत नहि धीर।
विविध विषय–विष–व्याल डँसत नित, जर्जर भयो शरीर।।
कलियुग करत क्रूर कुटिलाई, छोड़त तकि–तकि तीर।
भानुदत्त को नाथ उबारउ, काटहु भव–जंजीर।।

पद–20

राम–भजन–रस लूटै

रे मन! राम–भजन–रस लूटै।
विषय–वासना के रस–वश ह्वै काहे को शिर कूटै ??
नित नवीन सत्संग–सुधा तजि पामर! क्यों विष घूँटै ?
राम–बिना अभिमान–धनुष कहु कैसे कबहूँ टूटै ??
राम–भजन ते तीन ताप कै भाँड़ा सब विधि फूटै।
मोह–ग्रंथि 'मधुरेश' परी सो छूटत–छूटत छूटै।।

पद–21

करो मन! राम–भजन की टेक

करो मन! राम–भजन की टेक।
राम–भजन–बिन काम न आवैं ज्ञान–विचार–विवेक।।
भाषत वेद–पुराण–शास्त्र–सुर ऋषि–मुनि संत अनेक।
भजन–सुधा से राम प्रभू का करो नित्य अभिषेक।।
भवसागर से पार होन हित और उपाय न नेक।
भानुदत्त सब लोक सुधारत राम–भजन ही एक।।

पद–22

करो रामरसायन–पान

करो मन! रामरसायन–पान।
भटकत–भ्रमत कहाँ भव–वन में किये घोर अभिमान।।
रामरसायन छोड़ि खात मल शूकर–श्वान–समान।
शेष–महेश–शारदा–नारद करत राम–गुण–गान।।
राम सदा ही सत्य सनातन, सब में राम प्रधान।
राम–रसायन–बिना व्यर्थ सब योग–ज्ञान–विज्ञान।।
वेद–पुराण बतावत महिमा, पावत नहीं निदान।
भानुदत्त छल–कपट छोड़ि सब करो राम कै ध्यान।।

पद–23

राम! तुम्हीं हो प्रियतम प्यारे

राम! तुम्हीं हो प्रियतम प्यारे।
तुम–बिन फीके लागत जग के भौतिक लाभ–भोग–रस सारे।।
सपने हूँ न शान्ति–सुख सच्चा पावत कोऊ बिना तुम्हारे।
शबरी–गीध–गजादि अनेकन जीव कृपाकरि तुमने तारे।।
ज्ञानी घोर महा अभिमानी भव में भटकैं मारे–मारे।
भानुदत्त के नाथ! हरो सब पाप–ताप–अभिशाप हमारे।।

पद–24

प्रभो! मुझको दो प्यार

दीनबन्धु परमेश! प्रेम के तुम हो पारावार।
प्रभो! मुझको दो अपना प्यार।।

सुख–संपति–धन–मान–बड़ाई सब झूठे के झूठे,
सब कुछ पा कर भी क्या पाया? यदि तुम मुझसे रूठे,
तुम ही मेरी जीवन–नौका के हो खेवनहार।
प्रभो! मुझको दो अपना प्यार।।

सरिता चलते–चलते जब–तक सागर में न समाती,
तब–तक उसकी प्रेम–साधना सफल नहीं हो पाती,
हो जाती है धन्य सिन्धु से जब करती अभिसार।
प्रभो! मुझको दो अपना प्यार।।

तुम से मिलने की आशा में मन रहता बेचैन,
पिघले हुए हृदय के रस को बरसाते हैं नैन,
रुचता नहीं रंच भी मुझको खान–पान–शृंगार।
प्रभो! मुझको दो अपना प्यार।।

जिस पर कृपा–कोर की तुमने, उसे मिली शुभ राह,
मुझको तो बस, एक तुम्हारे नित्य मिलन की चाह,
सोना–चाँदी–धन क्या चाहूँ, क्या माँगूँ संसार?
प्रभो! मुझको दो अपना प्यार।।

भव–कानन में आ कर मेरे खाली दोनों हाथ,
बिना तुम्हारे कौन किसी का सब दिन देता साथ,
ही हो मधुरेश, दीन के नित्य एक आधार।
प्रभो! मुझको दो अपना प्यार।।

प्रभो! मुझको दो अपना ...।



धर्मभार्या-

श्रीमती सुमन त्रिपाठी

(२६-०१-१९५३, ३१-०८-२०१८)

क्यों मुझको छोड़ गयी तुम?

मेरे मन की धवल चन्द्रिके!
क्यों मुझसे मुख मोड़ गयी तुम?

तुम-बिन जीवन सूना-सूना,
क्षण-क्षण बढ़ता है दुख दूना,
चलते-चलते साथ मुझे क्यों
बीच राह में छोड़ गयी तुम?
क्यों मुझसे मुख मोड़ गयी तुम??

तुम मेरी जीवन-गीता थी,
प्राणों से बढ़कर प्रीता थी,
प्रेम-सूत्र में बँधी हुई नित,
फिर भी जग में परिणीता थी,

अनजाने ही, क्या जाने क्यों
प्रेम-सूत्र को तोड़ गयी तुम?
क्यों मुझसे मुख मोड़ गयी तुम??

रहता था निशिवासर जग में
खिले सुमन-सा सुमन तुम्हारा,
सुमन! तुम्हारे बिना व्यथित है
अब तो मेरी जीवन-धारा,

मेरे जीवन का मंगल - घट
क्यों निष्ठुर बन फोड़ गयी तुम?
क्यों मुझसे मुख मोड़ गयी तुम??

श्रावणी पर्व-2019 -आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'



परिचयाक्षर

कवि, लेखक, समीक्षक, सम्पादक

आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

जन्म- २ जनवरी, १६४६ ई०

माता- श्रीमती राजरानी देवी **पत्नी-** श्रीमती सुमन त्रिपाठी

पिता- श्री भगवती प्रसाद त्रिपाठी 'भगवतशरण'

जन्मस्थान- ग्राम व पत्रालय-गुलरिहा, जनपद-उन्नाव, उ०प्र०

सम्प्रति- बी०एन० इण्टर कालेज, अकबरपुर-अम्बेडकरनगर से सेवानिवृत्त आचार्य

कृतित्व- ईसवीय सन्-१६६७ से अद्यावधि- पर्यन्त देश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लेख एवं रचनायें इत्यादि प्रकाशित।

प्रकाशित कृतियाँ- (१) भाव प्रसून (छन्द संग्रह) १६६६ ई०, (२) लीला माधुरी (छन्द संग्रह) १६७१ ई०, (३) वेदना (खण्ड काव्य) १६७७ ई०, (४) वियोगिनी (खण्ड काव्य) १६७६ ई०, (५) हनुमत्-शतक (ब्रजभाषा) १६८२ ई०, (६) तत्त्वदर्शन (मुक्तक काव्य) १६८७ ई०, (७) भगवती-शतक (ब्रजभाषा) १६८४ ई०, (८) उरवीणा (गीत संग्रह) १६८५ ई०, (६) भारत व्यथा (अवधी प्रबन्ध) १६८७ ई०, (१०) जय जन्मभूमि (खड़ी बोली प्रवन्ध काव्य) १६८८ ई०, (११) जय गीधराज (महाकाव्य) १६८८ ई०, (१२) संघर्ष (वीर काव्य) १६६१ ई०, (१३) पुष्पांजलि (गीत संग्रह) १६६२ ई०, (१४) जय भारत जय भारती (गीत संग्रह) १६६४ ई०, (१५) आओ बच्चो गाओ बच्चो (बाल गीत) १६६४ ई०, (१६) हनुमन्महानाटक (१६६४ ई०), (१७) स्वयंप्रभा (खण्ड काव्य) १६६५ ई०, (१८) क्रान्तिवीर आजाद (महाकाव्य) १६६७ ई०, (१६) जीवनवीणा (छन्दकाव्य) १६६७ ई०, (२०) गीतपर्व (गीतसंग्रह) १६६८ ई०, (२१) बच्चे गायें गीत, (२२) प्यारे पक्षी प्यारे फूल, (२३) पर्यावरण की पुकार (तीनों १६६६ ई० में प्रकाशित), (२४) गीत वृन्दावन २००१ ई०, (२५) धूप के फूल (निबन्ध संग्रह) २००२ ई० (२६) गीतगंगा २००२ ई०, (२७) राष्ट्र अस्मिता के निहितार्थ २००३ ई० (२८) राष्ट्रचिन्तन के आयाम २००३ ई० (२६) दोहा कुंज २००३ ई०, (३०) साहित्य-चिन्तन २००४, (३१) भ्रमभंजन २००४, (३२) कर्तव्य-मार्ग २००५, (३३) मानवता २००५, (३४) विविधायन (गीत संग्रह) २००६, (३५) धर्म-चिन्तन-२००६ ई०, (३६) बच्चों की दुनिया-२००७ ई०, (३७) कल्याणी चालीसा-२००७ ई० (३८) ब्रजवेणु-२००७ ई०, (३६) अहिंसा-२००८ ई०, (४०) गीतगोपाल-२००८ ई०, (४१) विनय-वाटिका, (४१) संकटमोचन (अवधी प्रबन्धकाव्य) २०१६ ई०, (४३) नवदुर्गास्तोत्र (२०१८), (४४) विनयाष्टक (२०१६), (४५) श्रीहनुमत्हृदय-स्तोत्र (२०१६) इत्यादि ६२ पुस्तकें प्रकाशित।

प्रकाशोन्मुख कृतियाँ- अहिल्यायन, गंगायन, जयन्त, श्रीरामचरितायन, बच्चे गायें, बालवीणा, बृज-विनोद इत्यादि।

संस्थापना एवं सम्पादन-प्रकाशन- १६६५ में 'हिन्दी सहकार संस्थान' की स्थापना करके राष्ट्रीय चेतना एवं सत्साहित्य की पत्रिका 'सहकार- का सम्पादन-प्रकाशन १८ वर्षों तक।

पुरस्कृत कृतियाँ- १६६६ में पं० भूपनारायण दीक्षित 'बाल साहित्य पुरस्कार'-५०१ रू०, 'आओ बच्चो गाओ बच्चो' कृति को प्राप्त, १६६७ में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा 'हनुमन्महानाटक' को रू ८००० का पुरस्कार प्राप्त २००५ में 'भगवती शतक' पुस्तक को बृजभाषा साहित्य सम्मान, जयपुर द्वारा ५००० रूपयों का पुरस्कार प्राप्त, २०१५ में 'हिन्दी सभा', सीतापुर द्वारा 'श्रीरामकृपा स्तोत्र' पर श्रीरामकथापुरस्कार प्राप्त।

अलंकरण एवं सम्मान- 'काव्यश्री' अलंकरण (१६६५), आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्मान (१६६७), मैथिली विश्व विद्यापीठ द्वारा 'महामहोपाध्याय' मानद उपाधि (१६६८), ए०वी०आई० (यू०एस०ए०) द्वारा मैन ऑफ द इयर सम्मान (१६६८) तथा अपने शोध परामर्श मण्डल में चयन। आई०बी०सी० कैम्ब्रिज द्वारा मैन ऑफ इयर (१६६८ सम्मान) तथा 'हूज-हू' के २७वें संस्करण में उल्लेख। महावीर सेवा संस्थान, प्रतापगढ़ द्वारा 'साहित्य शिरोमणि, उपाधि (१६६८), शिव संकल्प साहित्य परिषद, होशंगाबाद द्वारा 'छन्दश्री' सम्मान (१६६६), अ०भ०सा०स०, मथुरा द्वारा 'कविवर मैथिलीशरण गुप्त सम्मान' (२०००), प्रथम 'मीरा प्रतियोगिता पुरस्कार' सीतापुर द्वारा प्राप्त, विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ द्वारा 'विद्या वाचस्पति' उपाधि तथा 'महाकवि' मानद उपाधि (२००० ई०) प्राप्त। बाल साहित्य की विशिष्ट सेवा हेतु भा०बा०क० संस्थान, कानपुर, नागरी बाल साहित्य संस्थान, बलिया एवं बाल साहित्य कला संस्थान, बस्ती द्वारा सम्मानित तथा दीर्घकालीन महत्वपूर्ण साहित्य सेवा हेतु 'संस्कार भारती', उन्नाव द्वारा 'गुरु सम्मान' प्राप्त। महानुभाव विश्वभारती, महाराष्ट्र द्वारा ग्रन्थोत्तेजक (साहित्यालंकार) मानद उपाधि (२००१) तथा सरस्वती साहित्य वाटिका, गोरखपुर द्वारा 'सरस्वती साहित्य सम्मान' २००१ प्राप्त और साहित्यिक सामाजिक संस्था 'सामयिकी', भीलवाड़ा द्वारा विभिन्न सेवाओं हेतु २००१ में सम्मान-पत्र प्राप्त। हिन्दी भवन, गाजियाबाद के अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के क्रमशः ७वें, ८वें, ६वें तथा ११वें समारोह में हिन्दी भाषा साहित्य संस्कृति एवं विविध सेवाओं तथा 'सहकार' पत्रिका के स्तरीय सम्पादन हेतु सम्मान-पत्र प्राप्त। 'युग मानस संस्था' आन्ध्र प्रदेश द्वारा आयोजित अ०भा० लघुकथा प्रतियोगिता २००० में प्रथम पुरस्कार प्राप्त। 'साहित्य मण्डल' श्रीनाथद्वारा से 'बृजभाषा विभूषण' तथा 'सम्पादक शिरोमणि' सम्मान एवं 'सुरभि सा०सं०अकादमी' खण्डवा द्वारा 'राष्ट्रगौरव' सम्मान एवं 'पारसमणि' अलंकरण तथा अक्षरधाम समिति, हरियाणा द्वारा 'अक्षर आचार्य' उपाधि २००४ में प्राप्त। सन् २००५ में बी०एन०इं०का० अकबरपुर में सम्मानित एवं 'साहित्यभूषण' उपाधि प्राप्त। अ०भा०सा०संगम, उदयपुर, द्वारा 'कविसम्राट' एवं रा० राजभाषा पीठ-प्रयाग द्वारा २००७ ई० में 'भारतीरत्न' उपाधि प्राप्त। उ०प्र० राज्य कर्मचारी साहित्य संस्थान लखनऊ द्वारा २०११-१२ में 'साहित्य गौरव' सम्मान प्राप्त। सा०सां० संस्था-'आचमन'-उन्नाव द्वारा 'साहित्य गौरव' अलंकरण

आजीवन मानद सदस्य- संस्कार भारती, (अवध) उन्नाव तथा 'नारायण सेवा संस्थान' उदयपुर (राज०) के आजीवन सदस्य।

वर्तमान सम्पर्क सूत्र- 'साहित्यमण्डप', चन्द्रलोक कालोनी, शहजादपुर, अकबरपुर, अम्बेडकरनगर, उ०प्र० मो०-७०८०३२२७६५,७६६८५२५३४२